किस्मत का खिलाड़ी

[गजसिंह चरित्र]

मूल लेखक
श्रमणसूर्य आशुकवि प्रवर्तक
मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी महाराज

रूपान्तरकार
श्री सुकनमुनि

प्रकाशक
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर

पुस्तक :
किस्मत का खिलाड़ी

मूल चरित्र लेखक :
मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी महाराज

रूपान्तरकार :
श्री सुकन मुनि

प्रकाशक :
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर [राज०]

मुद्रक :
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

द्वितीयवार :
वि० सं० २०४७, वैशाख पूर्णिमा
मई १९९०

मूल्य : ८ रुपया

अपनी बात

जैनसाहित्य के चार अनुयोगों में धर्मकथानुयोग किंवा चरितानुयोग एक महत्वपूर्ण तथा सर्वजन-सुलभ सुबोध अनुयोग है। चरित्र या कथानक के माध्यम से किसी शाश्वत सत्य का उद्‌घाटन बहुत ही रोचक एवं जनभोग्य होता है। इसलिए जैन साहित्य का बहुत बड़ा भाग चरितानुयोग में ग्रथित-गुम्फित है। प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंश-गुजराती तथा राजस्थानी भाषा का भंडार इस चरित्र साहित्य से समृद्ध है।

श्रमणसूर्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री मिश्रीमलजी महाराज की काव्य कला से आज कौन जैन अनभिज्ञ है? वे जितने ओजस्वी तेजस्वी प्रवक्ता थे, उतने ही तेजस्वी तथा प्रवाहशील कवि थे, आशुकवि थे। उनकी ललितकाव्य-कला ने जहाँ पांडवयशोरसायन, जैन रामायण जैसे महाकाव्यों की सर्जना की है, वहाँ सैकड़ों ही लघुचरित्रों, हजारों श्लोक, दोहा, गीतिका आदि से राजस्थानी भाषा के काव्य-भंडार को सुशोभित किया है। गुरुदेव श्री की कविता जितनी सहज और सुबोध है उतनी ही मार्मिक और शिक्षाप्रद भी है। आज भी वे सैकड़ों श्रावक-श्राविकाओं के कण्ठाग्र हैं, तथा अनेक श्रमण-श्रमणियाँ व्याख्यानों में उनका सरस वाचन करके जन-जन को प्रतिबोध देते है।

बहुत समय से लोगों की, खासकर नई पीढ़ी के युवक-युवतियों व विद्यार्थियों आदि की मांग आती रही है कि गुरुदेव श्री के चरित्रकाव्य राजस्थानी भाषा की कविता में

होने से हम पढ़कर उनका वांछित लाभ नहीं उठा सकते
एक तो काव्य वैसे ही दुर्बोध होता है, फिर राजस्थानी
डिंगल-पिंगल मिश्रित, अतः उनका हिन्दी रूपान्तर किय
जाय तो अधिक लोगों के लिए उपयोगी होगा।

जनता की इसी भावना का ध्यान रखकर गुरुदेव श्री
चरित्र काव्यों का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करने की यह योजन
फलवती हो रही है।

प्रस्तुत 'किस्मत का खिलाड़ी' उपन्यास में गजसि
चरित्र का हिन्दी रूपान्तर है। इस चरित्र में गुरुदेव श्री
कथानक को वड़े ही सरस और चमत्कारपूर्ण ढंग से मो
दिया है। मनुष्य का पुण्य-प्रभाव उसे कहाँ; किस रूप में सफ
लता प्रदान करता है और जीवन में कितने उतार-चढ़ा
दिखाता है इस तथ्य की सुन्दर और हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति
इस चरित्र में हुई है। मैं इस मूल कथा के सम्वन्ध में अधि
यहाँ न कहकर पाठकों को रुचिपूर्वक पढ़ने का अनुरोध भ
कर देता हूँ।

मेरा यह लघु प्रयत्न पाठकों को रुचिकर लगने
कारण अव द्वितीय संस्करण निकाला गया है। यह जीवन
समत्व भावना का जागरण करेगा, ऐसी मैं कामना करता हूँ

वैसाख शु. १५, संवत् २०४७ —**उपप्रवर्तक सुकन मुनि**

1

भरतक्षेत्र में एक नगर था, माण्डवगढ़। वहाँ का राजा था जामजशा। नगर सुन्दर था। प्रजा खुशहाल थी। राजा न्यायप्रिय, वीर और प्रजावत्सल था। सब कुछ ठीक-ही-ठीक था। राजा प्रजा का पितातुल्य पालन-पोषण करने वाला और प्रजा राजा को चाहने वाली। सब सबके अनुकूल और सबको अपने लिए सब अनुकूलताएँ प्राप्त थीं। फिर भी एक प्रतिकूलता थी। वह भी इसलिए कि अनुकूलता के साथ प्रतिकूलता भी रहती है, जैसे फूल के साथ काँटा। यह प्रतिकूलता अथवा दुःख यह था कि राजा जामजशा के कोई संतान नहीं थी। विडम्बना यह कि राजा के सात रानियाँ थीं। रानियाँ सात और पुत्र एक भी नहीं। राजा तो यही चाहता था कि किसी एक के ही पुत्र हो जाए। मेरा वंश तो चले और प्रजा को भावी राजा की आशा मिले। पर रानियाँ चाहती थीं कि हम सभी पुत्रवती बनें। अपना-अपना स्वार्थ सभी सोचते हैं।

राजा जामजशा के सात रानियों में जो दामवती नाम की रानी थी, वह अन्य छहों से कुछ अलग-थलग रहती थी। कारण, उसका स्वभाव ही ऐसा था। कनकश्री, श्रीमती, रत्नमाला, वासन्ती, भामिनी और वसन्तमाला—ये छहों एक गुट

में रहती थीं। ये सब एक-से स्वभाव की थीं। सब-की-सब तीखे स्वभाव की, चतुर-चालाक और त्रियाचरित्र में प्रवीण थीं। इसीलिए राजा को बनाकर रखती थीं। राजा भी इन्हीं के वश में था, सो इनकी चतुराई के कारण वह भोली-भाली दामवती रानी की उपेक्षा-सी करता था। यों कहें कि दामवती रानी तो इसी बात की रानी थी कि राजा की सात रानियों की गिनती पूरी करती थी।

दामवती धर्मनिष्ठा थी। उसका क्षण-प्रति-क्षण धर्म को समर्पित था। संकट, दुःख, सुख और सुदिन सब कर्मों का फल है, इस सिद्धान्त में उसकी अटल आस्था थी। इसीलिए वह मानती थी कि मेरे पति मुझ पर प्यार नहीं करते और मेरी छहों सौतों के वश में रहते हैं, इसका कारण मेरे पूर्वकृत कर्म ही हैं। यों तो परम्परा और वंशानुगत प्रभाव से राजा जामजशा और उनकी अन्य छहों रानियाँ भी जैनधर्म को मानने वाली थीं, पर इनका मानना मात्र एक लकीर पीटना ही था और इसके विपरीत रानी दामवती पूरी तरह निर्ग्रन्थ धर्म की उपासिका थी। वह नित्य नियम से सामायिक-प्रतिक्रमण आदि धर्म-क्रियाएँ करती थी। नवकार मन्त्र पर तो उसका अटूट विश्वास था। संतान के विषय में भी रानी दामवती का सोचने का ढंग परोपकार पूर्ण था। वह सोचती थी, हम सातों-की-सातों बांझ निकलीं। यदि मेरे कोई पुत्र न हो, पर किसी के भी हो जाए। मैं पुत्रवती नहीं बनूंगी तो क्या हुआ। मेरे स्वामी तो पुत्रवान् बन जायेंगे। राजसिंहासन का उत्तरा-

..धिकारी युवराज माण्डवगढ़ की प्रजा को मिल जायगा और ..स्वामी को वंश-उद्धारक मिलेगा। यही क्या कम होगा।

ऐसी थी रानी दामवती। वह परम सुन्दरी भी थी और थी समस्त नारी गुणों से मण्डित सन्नारी-पतिव्रता। यह सब भाग्य की ही तो बात थी कि ऐसी रानी को भी राजा हृदय से नहीं चाहता था वल्कि अन्य छहों को प्रसन्न करने के लिए कभी-कभी तो उसकी स्पष्ट उपेक्षा भी कर देता था। ऐसे ही दिन बीत रहे थे।

माण्डवगढ़ के आस-पास छोटे-बड़े कई गांव थे। इन्हीं गांवों में से एक छोटा गांव था जहां निर्धन मजूर लोगों की बस्ती थी। यहां के अधिकांश घर फूस के छाजन के थे। कुछ अच्छे भी थे, पर वे भी कच्चे मिट्टी के थे। इस गांव में लकड़हारे, भेड़-बकरियां पालने वाले गड़रिये, मृत-पशुओं को उठाने वाले चाण्डाल, धोवी, कुम्हार और बढ़ई आदि विविध जाति के मजूर रहते थे। इनकी स्त्रियां भी पुरुषों के साथ काम करती थीं। इनके बच्चे भी रूखी-सूखी खाकर, फटा-चिथड़ा तन पर लपेटे रहते थे। ऐसे जीवन में भी सब-के-सब मस्त थे। अभाव तो मन के अनुभव करने की चीज है। धनी भी सोचते हैं कि मैं लखपती ही रहा, करोड़पति नहीं बन पाया। वे भी अभाव अनुभव करते हैं, इसलिए उनके जीवन में अभाव होता है। इसके विपरीत इस गांव के लोग अभाव में भी 'है' का अनुभव करते थे, इसलिए सुखी और मस्त थे। इनका सोचने का ढंग था—गाय-भैंसे नहीं हैं, पर भेड़ें तो

'हैं' । अच्छी साड़ी नहीं है, पर नीले रंग की खद्दर की चूनर तो 'है' । इस गाँव के लोग अपने-अपने धन्धे के सम्बन्ध में निकट के नगर, राजधानी माण्डवगढ़ में भी आते-जाते थे ।

बड़े लोग तो नगर की कृत्रिम सुन्दरता के अभ्यस्त हो गए थे । पर जब बच्चे अपने माता-पिता के साथ पहली बार जाते तो माण्डवगढ़ के दृश्यों को ऐसे आँखें फाड़-फाड़ कर देखते, जैसे ये सपनों के देश में आ गए हों । नगर के राजपथ तक उनको चक्कर में डाल देते । एक बार दो बालक अपनी माँ के साथ माण्डवगढ़ आये तो लम्बे-चौड़े भव्य राजपथ को देखकर बोले—

"अम्मा ! यह क्या है ?"

"बेटा ! यह यहाँ की रथ्या है ।"

"रथ्या ! क्या होती है माँ ?"

"अरे, तू तो रथ्या भी नहीं जानता ? इस पर रथ चलते हैं । इसलिए इसे रथ्या कहते हैं ।"

"तो रथ क्या होता है माँ ?"

माँ ने बताया—

"जैसे हमारे गाँव में बैलगाड़ियाँ होती हैं, वैसे ही बैठ कर जाने के लिए नगरवासियों के पास रथ होते हैं । रथों में चार या छह चक्र होते हैं । इनमें दो बैलों की जगह चार घोड़े जोते जाते हैं । इनमें सोने-चाँदी की चमक भी होती है और ये बहुत तेज दौड़ते हैं । बस, अब मेरे कान मत खाना । देखते चलो ।"

बच्चे देखते चले। रथ्याएँ देखीं। उनके किनारे दोनों ओर खड़े आम, शाल्मली, अशोक आदि के छायादार वृक्ष देखे। जब बाहरी भाग समाप्त हो गया तो राजपथ के दोनों ओर बने राजकीय अतिथिशाला के भव्य भवन देखे। नगर के बीचों-बीच विशाल सरोवर भी देखा। इसके घाट स्फटिक पत्थर के बने थे। माँ के साथ उसके दोनों बच्चों ने पानी पिया इसी सरोवर में और फिर एक बच्चे ने कहा—

"अम्मा, हमारे गाँव की पोखर का पानी कैसा गन्दा रहता है। पोखर से बड़ा भी है यह तो।"

माँ ने कोई जवाब नहीं दिया। इसका जवाब भी क्या देती? बच्चों की उँगली पकड़े चली जा रही थी। यह स्त्री चाण्डालिनी थी। कल इसके पति ने किसी सेठ की मरी गाय को उठाकर फेंका था। उसी के बदले कुछ लेने यहाँ नगर में आई थी। सवेरे का वक्त था। जब वह मुंह-अँधेरे उठकर चली तो आठ और दस वर्ष के उसके दोनों बच्चे भी पीछे पड़ गए कि अम्मा हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे। हमने कभी माण्डवगढ़ नगर नहीं देखा। चाण्डाल ने भी सहारा दे दिया—लेती जाओ। स्त्री को अकेले वैसे भी नहीं जाना चाहिए। बच्चे साथ रहेंगे तो अच्छा ही है। इसका अर्थ चाण्डालिनी ने कुछ और ही समझा। कृत्रिम रोष के साथ बोली—

"अकेले होने पर क्या मुझे कोई खा जायगा? तुम बड़े वहमी हो। पुरुष होते भी बड़े शक्की हैं।"

बच्चे हाथ-मुंह धोने बाहर भाग गए थे। एकान्त देख चाण्डाल ने शृंगार रस के छींटे देना शुरू कर दिया बोला—

"गण्डक की माँ! काली होने पर भी तुम इतनी सुन्दर लगती हो कि क्या कहूँ? जैसे गोरे मुंह पर काली-कजरारी आँखें फबती हैं, ऐसे ही गोरी-गोरी नगर की स्त्रियों के बीच तुम लगोगी। भला, मैं तुम्हें अकेली कैसे जाने दूंगा?"

पति द्वारा अपनी प्रशंसा सुनकर रोनी नाम की यह चाण्डालिनी फूलकर कुप्पा हो गई। यद्यपि पेंतालीस की थी। पर अब अपने को षोडशी समझने लगी। पति द्वारा की गई प्रशंसा का कुछ जवाब देना चाहती थी। पर शब्द मिल नहीं रहे थे। कुछ-न-कुछ कहना था, सो इतना ही कह पाई—

"बनाने की कला में तो तुम एक हो ही। ऐसा ही डर है तो तुम्हीं चलो मेरे साथ।"

इतने में गण्डक और मण्डक दोनों बच्चे आ गए। बने-बनाये कार्यक्रम के अनुसार रोनी उन्हें लेकर माण्डवगढ़ के लिए चल दी। खेतों की पगडंडियाँ और फिर कच्चा दगड़ा पार करके वह जब नगर के राजपथ पर पहुँची तो बच्चों ने प्रश्न करने शुरू कर दिये। रथ्या और रथ का परिचय बताने के बाद रोनी सरोवर पर पहुँची। उसके बच्चों ने पानी पिया। दिन निकल आया था। रोनी ज्योंही सरोवर की सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आई कि राजा जामजशा घोड़े पर सवार होकर बाग की ओर जा रहा था। रोनी ने आकस्मिक

ढंग से राजा को देखा और फिर जैसे कुछ याद आ गया हो, उसने अपने मुंह को पल्ले से ढक लिया और राजा की ओर से पीठ भी फेर ली। राजा को यह सब अटपटा लगा। नियमानुसार तो भूमि तक मत्था टेक कर रोनी को राजा का अभिवादन करना चाहिए था। पर हुआ ऐसा कि राजा को आश्चर्य भी हुआ और बुरा भी लगा। उसने तुरन्त घोड़ा मोड़ दिया। राजसभा के द्वार पर घोड़ा छोड़ा। सीधा सभा में पहुँचा। मन्त्री आदि पहले से ही सभा में उपस्थित थे। आज राजा को समय से पहले सभा में आया देख सब-के-सब कुछ घबराये। कुछ-न-कुछ बात तो है, यह सोच मन्त्री आदि राजा के मुख की ओर देखने लगे। राजा की मुख-मुद्रा आज कुछ कठोर थी। महामन्त्री फूलसिंह भी कुछ पूछने का साहस नहीं कर पा रहा था। सिंहासन पर बैठते ही राजा ने महामंत्री फूलसिंह से कहा—

"मंत्रिवर! सरोवर में बाग की ओर जो पथ जाता है, उस पथ पर एक चाण्डालिनी नगर की ओर आती मिलेगी। उसे यहाँ ले आओ। उसके साथ दो बच्चे भी हैं। यम की पुत्री-सी काली है।"

मंत्री तुरन्त उठा। दो सेवकों को इशारे से ही साथ ले लिया। चाण्डालिनी उसे नगर की ओर आते हुए तो नहीं मिली। बल्कि नगर से लौटते हुए मिली। 'अब तो शकुन बिगड़ गया। काम भी बिगड़ गया। निरवंशी—अपुत्री राजा का सवेरे-सवेरे ही मुंह दिख गया। आज तो खाना भी नहीं

मिलेगा। जाने क्या न हो जाए ?' यही सब सोच...
चाण्डालिनी रोनी गण्डक-मण्डक को साथ लिए अपने गांव को
लौट रही थी। मंत्री ने उसका मार्ग रोककर कहा—

"चलो हमारे साथ ! नरदेव जामजशा बुलाते हैं।"

कांप गयी रोनी। सोचने लगी—'जो सोच रही थी, सो
हो ही गया। बड़े-बूढ़ों की कहावतें गलत थोड़े ही हैं ? मैंने
क्या बिगाड़ा है राजा का ? बुला रहा है। जाने क्या करेगा ?
सच बोलूं तो मरी और झूठ बोलकर भी बच नहीं सकती।
अब तो जाना ही पड़ेगा। 'चित्त भी मेरी, पट्ट भी मेरी
और अण्टा मेरे बाप का।' यह कहावत यदि कहीं सच होती
है, तो राजा के साथ ही होती है।' इस तरह शंका-आशंकाओं
से भरी डरी-झिझकी और सहमी-सहमी रोनी मंत्री के पीछे-
पीछे चल दी। बच्चे भी पीछे-पीछे लगे थे। वे तो कुछ भी
नहीं समझ पाये थे। अपनी बाल-बुद्धि से कुछ समझने का
प्रयास अवश्य कर रहे थे। अब तो वे अपनी मां से भी कुछ
नहीं पूछ सकते थे। आपस में ही घुसर-पुसर करते चलते थे
उसी समय एक श्रेष्ठी का रथ जा रहा। उसे देख गण्डक
ने मण्डक से धीरे-से कहा—

"मण्डक ! देख वह रहा रथ। ऐसा ही तो अम्मा ने
बताया था।"

"अरे हां। यह तो बहुत अच्छा है।" मण्डक ने कहा—
"इस पर तो धुजा (ध्वजा) भी फहरा रही है।"

गण्डक का ध्यान दूर से आते हाथी की ओर गया

ंग दिखाते हुए उसने कहा—

"देख मण्डक ! यह हाथी है। ऐसा हाथी तो एक बार मारे गांव में भी आया था न। तूने देखा था ?"

"हां देखा था गण्डक भैया !" मण्डक बोला—"इसके ही दो दांत बाहर निकले हुए हैं।"

गण्डक बोला—

"ऐसे ही हाथीदांत तो हमारे बापू जंगल से लाये थे। उसके चूड़े हमारी अम्मा पहनती हैं। बापू कहते थे कि हाथी के दांत खाने के और होते हैं और दिखाने के और होते हैं।"

इन्हीं बातों में राजभवन आ गया। नौ मंजिल ऊँचे भव्य भवन को दोनों बालक बड़े आश्चर्य से देखने लगे। मंत्री राजसभा को जाने के लिए मुड़ा। रोनी ने मुड़कर अपने बच्चों को ऊपर मुंह उठाये खड़े देखा तो आवाज दी—"आओ !" दोनों बच्चे दौड़कर मां के पास पहुंचे। फिर सब बड़े फाटक के पास पहुंचे। यह फाटक सोने से मढ़ा था। जगह-जगह हीरा, पन्ना, पुखराज के बने हुए फूल लगे थे। प्रहरी खड़े थे। सबने मंत्री को अभिवादन किया। "मेरे पीछे आओ।" कहकर मंत्री फाटक में घुसा। पीछे-पीछे रोनी भी गयी। भीतर पहुंची। प्रजाजन की वीथी में खड़ी हो गयी रोनी। राजा ने मंत्री को संकेत दिया तो वह रोनी को सिंहासन के निकट ले गया। भयभीत रोनी ने भूमि तक माथा टेककर राजा को प्रणाम किया और फिर अपने भाग्य का निर्णय जानने के लिए खड़ी हो गयी।

राजा ने कहा—

"कौन हो तुम ?"

"आपकी प्रजा हूँ अन्नदाता ।"

"सो तो मैं देख रहा हूँ । नाम-धाम ?"

रोनी बोली—

"अन्नदाता ! माण्डवगढ़ के पास की मजूरपल्ली
रहने वाली चाण्डालिनी रोनी हूँ ।"

"खैर छोड़ो ।" राजा ने गम्भीर होकर कहा—"मु
देखकर तुमने अपना मुँह क्यों ढक लिया था ? सच बता
बहानेबाजी तो चलेगी नहीं । मेरी ओर से पीठ फेरकर ख
हो गयी थीं तुम तो ?"

रोनी चुप रही । सच ही कहना था और सच कहने
उसका साहस नहीं हो रहा था । तब राजा ने उसका सा
बढ़ाया—

"रोनी ! सच बोलने वाला कभी घाटे में नहीं रहत
फिर मैं तो तुम्हें यह आश्वासन भी दे रहा हूँ कि सच कित
भी कड़वा हो मैं उसे पसन्द करता हूँ । सच बोलनेवाले
सात गुनाह माफ कर देता हूँ ।"

राजा के इस अभय-आश्वासन से रोनी का भय
हुआ । वह सोचने लगी—'मैं क्या कुछ अपनी ओर
कहूँगी ? पूरा लोक कहता है कि अपुत्री का मुँह सवेरे-स
नहीं देखना चाहिए । अब जो हो, सो हो । सच कहूँगी
तो ।' यह सोच रोनी ने कहना शुरू किया—

"अन्नदाता ! मैं अपढ़-गँवार लोक-विश्वास और लोक-मत को ही शास्त्र मानकर जीती हूँ। समस्त लोक यह कहता है कि अपुत्री मनुष्य का प्रभात में मुख-दर्शन ऐसा अशुभ होता है कि दिनभर खाना नसीब नहीं होता। हम मजूर रोज कुआँ खोदकर रोज पानी पीते हैं। मुझे भी आशंका हुई कि आज जाने क्या हो, सो मैंने यह अपराध कर डाला। क्षमा कर दीजिए महाराज !"

राजा बोला—

"तुम निर्दोष हो रोनी ! अन्धविश्वास के चक्कर में पड़ गयीं तुम। तुम्हारी सरलता और भोलापन भी सराहनीय है। तुमने सच बोला, इसके लिए मैं तुम्हें कुछ पुरस्कार अवश्य दूंगा। मेरा पुरस्कार अन्न-भोजन का होगा, ताकि लोकमत पर आधारित तुम्हारा यह अन्धविश्वास भी मिट जाए कि अपुत्री मनुष्य के मुख-दर्शन से भोजन नहीं मिलता।"

रोनी की जान में जान आ गयी। प्रसन्न मन से उसने सोचा—'लोकानुभव उल्टा हो गया आज तो। घर जाकर मैं रूखा-सूखा बनाती और मनचाहा मिष्टान्न भोजन दे रहा है राजा।"

राजा ने अपनी पाकशाला से ढेर सारी मिठाई, पूड़ी-पकवान आदि रोनी की झोली में भरवा दिये। इतने कि दो दिन भर पेट खाए। साथ में गेहूँ-चावलों से भरी एक गाड़ी भी भेजी। बहुत खुश थी रोनी। इतना तो वह पूरे जीवन की मजूरी में भी न पाती। गाड़ी उसके पीछे-पीछे चल रही थी।

रास्ते में मण्डक ने मीठाई माँगी। रोनी ने मुस्कराकर मीठी झिड़की दी—

"हिश ! इतना भी सबर नहीं। घर चलकर सभी खायेंगे।"

इधर जब रोनी बहुत देर गये तक घर नहीं पहुँची तो उसका पति बहुत झुंझलाया। उसे कुछ खा-पीकर जंगल जाना था। मन-ही-मन बड़बड़ाया चाण्डाल—"आने दो आज। खाल उधेड़ दूंगा। जरा से काम में इतनी देर लगा दी। जाने कहाँ-कहाँ मटरगश्ती करती-फिरती है।"

रोनी घर पहुँची। धान्य से भरी गाड़ी द्वार पर रुकवा दी। उसकी ओर चाण्डाल की पीठ थी, सो वह अपने पति का आक्रोशपूर्ण चेहरा नहीं देख पायी। भीतर घुसते ही पूड़ी-पकवान और मिठाई यह सोचकर रखे कि चाण्डाल बहुत खुश होगा। सब कुछ पटकने के बाद रोनी बोली—

"मण्डक के बापू ! यह देखो, मैं क्या ले आयी ?"

घूमकर चाण्डाल ने रोनी के एक लात जमाई और तड़ातड़ दस-बीस थप्पड़ मारने के बाद पूछा—

"कहाँ रही अब तक ? मुफ्त के पकवान उड़ाती-फिरती है। मैं नहीं जानता था कि तू यहाँ तक गिर जायगी।"

रोनी को भी ताव आ गया। बोली—

"शिकारी की तरह झपट मारने लगे। मैं तो अबला हूँ सो पिट ली। इस तरह बिना बात के किसी बराबर वाले को मारते तो मजा चखा देता।"

"तो तू विना वात के मारना कहती है ?" चाण्डाल
ाड़ा—"यह माल कहाँ से उड़ा लायी ? कोई यों ही दे
ा ? कंजूस वनिये वामनों तक को तो कभी इतना देते नहीं,
। चाण्डालों को देंगे ? मैं सब जानता हूँ। चिकने मुंह को
विल्ली चाटती है।"

"तुम तो कुछ भी नहीं समझते। मुझे भी अपना-जैसा
ाझते हो। तुम खुद तो ताक-झांक करते हो। अब किसकी
सम खाऊँ? स्त्री मैं भी हूँ और रानी भी स्त्री ही है।
म्हारे पास राज-पाट नहीं, पर मैं अपने दोनों बच्चों की कसम
ाती हूँ कि तुम्हीं मेरे लिए राजा हो। तुम्हारे कारण ही मैं
पने को रानी समझती हूँ।"

चाण्डाल कुछ नरम पड़ा। उसने पूछा—

"अच्छा भागवान! मान ली तेरी वात। पर एक तो
इतनी देर में आई और फिर यह मिठाइयाँ और पकवान
आई। फिर भला किसे सन्देह नहीं होगा?"

रानी वोली—

"अगर तुम मेरी मार वापस ले लो तो तुम्हें ऐसी वातें
ताऊँ कि तुम्हारा सन्देह ही न मिटेगा, वल्कि तुम वहुत खुश
ी हो जाओगे।"

खुश होकर वोला चाण्डाल—

"अरे रानी! यह मार तो अपनेपन की थी। तू इसका
रा मान गई? अब तो यही उपाय है कि वदले में तू मुझे
ार ले।"

"हाय दैया ! कैसा पाप चढ़ाते हो तुम ? तुम मीठा वोल दिये, इसी से मेरा दर्द ठीक हो गया।"

चाण्डाल वोला—

"अब वात को लम्बी मत कर। इस मिठाई का भेद वता दे।"

रोनी ने वताया—

"तुम्हें मिठाई की पड़ी है। वाहर देखो साल-दो साल कट जाएँ, इतने धान्य से भरी राजा की गाड़ी खड़ी है। यह सब राजा ने ही दिया है।"

"क्यों ? राजा ने क्यों दिया ?" चाण्डाल ने पूछा तो हँसकर रोनी वोली—

"तुम क्या समझते हो ? यही कि राजा का मन अपनी सातों रानियों से उतर चुका है और वह तुम्हारी रानी रोनी पर रीझ गया है ?"

"तू तो हँसी करती है रोनी ! वताती क्यों नहीं ?"

फिर रोनी ने आदि से अन्त तक सब कुछ अपने पति को वताया। सब कुछ सुनाने के वाद रोनी ने देखा कि उसका पति उसकी आशा के अनुसार खुश नहीं हुआ। नाखुश भी नहीं हुआ, वल्कि गम्भीर हो गया। रोनी ने पूछा—

"क्या सोचने लगे आप ? इतना पाकर भी खुश नहीं हुए।"

चाण्डाल वोला—

"रोनी ! यह सब वापस करके आ। यह अन्न हमें नहीं

पचेगा। लोकविश्वास युगों के अनुभव के बाद स्थिर होता है। लोक विश्वास के अनुसार अपुत्री राजा का अन्न भी नहीं पचता। इसके खाने से बीमार पड़ेंगे हम।"

रोनी ने पूछा—

"ऐसा कैसे हो जायगा? अन्न क्यों नहीं पचेगा?"

चाण्डाल ने बताया—

"अनुभव करके देख ले। गाड़ी में से कुछ दाने बिखेर कर देख। पास में ही अपने घर से लेकर बिखेरना। पक्षी राजा के अन्न को नहीं चुगेंगे।"

रोनी ने प्रयोग करके देखा। उसे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पक्षियों ने राजा के धान्य का दाना छुआ भी नहीं। रोनी ने तत्काल निश्चय किया—'जब पक्षियों का यह हाल है तो बात ठीक ही है। लौटा दूं राजा को। आज का दिन तो इसी आने-जाने में बीतेगा। बात तो वही हुई जो होनी थी। अपुत्री राजा के मुंह देखने से आज का दिन निराहार ही बीतेगा।'

चाण्डाल भी बिना खाये धनुष-बाण लेकर वन को चला गया। मण्डक-मण्डूक को रोनी ने आश्वासन दिया—

"बेटा! लौटकर कुछ बनाऊंगी। आज तो ऐसे ही बीतेगा। जाने किसके पुण्य से हमारे देश में अकाल नहीं पड़ता वरना ऐसे अपुत्री राजा के राज्य में जाने कितनों को कितने दिन भूखों मरना पड़ता। तुम यहीं खेलना मैं आती हूं।"

राजा द्वारा प्राप्त पूड़ी-पकवान और मिठाई लेकर

रोनी धान्य भरी गाड़ी के साथ-साथ पुनः नगर की ओर च
दी। गाड़ी राजसभा के सम्मुख रुकी। राजसभा समाप्त हो
का समय भी होता जा रहा था। रोनी सभा में पहुँची। बि
किसी भूमिका के रोनी ने राजा से करुणापूर्ण स्वर में निवेद
किया—

"अन्नदाता ! हम सब आपका दिया ही खाते हैं। आ
प्रजावत्सल और न्यायप्रिय सम्राट् हैं। फिर भी हम लो
विश्वास को त्यागकर नहीं जी सकते। आपका धान्य हम न
ले सकते। क्षमा करें नरनाथ !"

कहते-कहते रोनी रो पड़ी। राजा उसके हृदय
सरलता जानते थे। अतः पूछा—

"रोओ मत रोनी। मेरी प्रजा को निर्भीक होना चाहि
धान्य लौटाने का कारण स्पष्ट कह दो। तुम्हें मुझसे क
भय नहीं है।"

रोनी ने पुनः कहा—

"स्वामी ! आप मारें या छोड़ें। यह धान्य मैं नहीं
सकती। आज मैंने यह धान्य पक्षियों को चुगाया। उन्होंने
नहीं चुगा। लोकविश्वास कहता है कि सन्तानहीन राजा
धान्य पचता नहीं।"....

आगे कुछ नहीं कह पाई रोनी। राजा ने भी कुछ न
कहा। सिंहासन से उठते-उठते राजा ने मंत्री फूलसिंह
कहा—

"मंत्री ! रोनी को जाने दो। सभा विसर्जित कर दो

और तुम हमारे एकान्त कक्ष में आओ।"

सभा विसर्जित हो गई। मंत्री राजा के पास पहुँचा। उदास-गंभीर राजा ने मंत्री से कहा—

"मंत्री ! सब कुछ तुम देख-सुन चुके हो। ऐसी दशा में मैं अब माण्डवगढ़ में नहीं रह सकता। जो दशा आज पाण्डाल पत्नी की है, वही सब की है। सबका विश्वास वही है, जो रोनी का है। बस, अन्तर इतना है कि रोनी के मनोभाव जानने का अवसर आ गया और बाकी लोगों की बात उनके मन में है। जिस राजा का मुंह उसकी प्रजा देखना न चाहे, उस राजा को प्रजा पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं। अब तुम सम्हालो यह राज्य। मेरी ओर से प्रजा-पालन करो। मैं अब अपना राज्य छोड़कर जाऊँगा।"

"कहां जायेंगे आप ?" मंत्री फूलसिंह ने कहा—'राजन् ! चील-कौओं के कोसने से कहीं ढोर मरते हैं ? आपके बारे में जो रोनी ने सोचा है, ऐसा अज्ञानी लोग ही सोचते होंगे। छोटे लोगों के अन्धविश्वास की चिन्ता करके आप अपना राज्य छोड़ देंगे ?"

"क्यों नहीं छोड़ दूंगा ? अवश्य छोड़ दूंगा मैं।" राजा ने दृढ़ता से कहा—"मंत्री ! ऐसे अपमान-भरे जीवन से मरना नहीं अच्छा है ? मैं रोनी को दण्ड दे सकता था, पर उसका मनोभाव तो नहीं बदल सकता था ? तुम हठ मत करो। यदि मुझे राजा मानते हो तो मेरे आदेश का पालन करो।"

"मंत्री ! तप से सब कुछ सम्भव हो जाता है। मैं क
सदा के लिए जा रहा हूं ? वन में जाकर किसी देवी-देव
की आराधना करके उसे प्रसन्न करूंगा और सन्तान प्रा
का वरदान लेकर लौटूंगा, या फिर नहीं लौटूंगा।"

बुद्धिमान मंत्री ने राजा की बात पर मन-ही-मन टिप्प
की—'पौद्गलिक सुखों के लिए राजा देवी-देवता का
करेगा ? ऐसा ही तप यदि कर्मों का क्षय करने के लिए
तो उद्धार न हो जाए। भाग्यलिपि के विरुद्ध कौन देवी-देव
इतना समर्थ है, जो इसे सन्तान होने का वरदान दे ? पर क
पता, भाग्य की भावी का यही विधान हो कि राज्य को इ
ढंग से सन्तान मिले। तो जाने ही दूं राजा को। मेरे रो
से रुकेगा भी नहीं।'

यह सोच मंत्री राजाज्ञा से सहमत हो गया। तब शास
व्यवस्था सम्भाल ली। इधर जब रानियों ने सुना तो रनिव
में कुहराम मच गया। राजा ने उन्हें भी समझाया। रानि
को भी मानना पड़ा। श्याम वस्त्र पहनकर और श्याम घ
पर ही सवार होकर राजा जामजशा ने माण्डवगढ़ नगर छो
दिया।

भले मनुष्य जब बिछुड़ते हैं तो मानो प्राण ही हर ले
हैं। राजा को जाते देख सभी रोये। बहुतों ने तो खुलक
रोनी चाण्डालिनी को कोसा भी। राजा ने सबको रोते छोड़ा
रात को ठहरते और दिन को चलते राजा जामजशा बहुत दू
पहुंच गया। एक वन में रुककर राजा ने निश्चय किया-

'अब आगे नहीं जाना है। इसी वन में रुकूंगा। माण्डवगढ़ से तो बहुत दूर आ गया। अब यह वृक्षमूल ही मेरा घर होगा। और वन के कन्द-मूल भोजन। घोड़े के लिए भी यहां पर्याप्त घास है।"

एक पेड़ के नीचे की भूमि साफ करके राजा ने चादर बिछाई। घोड़ा पेड़ से बांध दिया और लेट गया। कितना एकान्त था यहां। सुनने के लिए पक्षियों का कलरव और सुनाने के लिए कोई नहीं। राजा घोड़े से ही बातें कर लेता। उससे कहा राजा ने—

"प्यारे अश्व ! तू बोलता नहीं है, पर सुनता-समझता तो सब है। अब तू ही मेरा साथी, सखा और भाई है। तेरे सहारे मैंने सैकड़ों कोसों की दूरी तय करली। अब सवेरे-सवेरे तू तो मेरा मुंह देखा करेगा ? पर तू मनुष्य की तरह और रोनी की तरह अंधविश्वासी नहीं है। रोनी मेरा प्रभात-मुख-दर्शन अपशकुन मानती थी, पर तू ही बता, क्या उसका मुख-दर्शन अशुभ नहीं था ? सवेरे-सवेरे मैंने भी तो उसका मुंह देखा था, सो देख अपना नगर छोड़ देना पड़ा। पर कौन कहे और किससे कहे ? लोग हैं कि अंधविश्वास पर जी रहा है। मेरा अशुभ मुंह देखने से रोनी का क्या बिगड़ा ? यही कि एक दिन खाना नहीं मिला होगा। और मेरा क्या हुआ, सो तू देख ही रहा है।"

कौन जाने राजा की बात घोड़े ने सुनी या नहीं। पर राजा का मन अवश्य हल्का हो गया था। □

2

"अरे राजा ! तू मंजिल से पहले ही रुक गया
जानता नहीं, जो बैठते हैं, उनका भाग्य भी बैठ जाता है औ
जो सोते हैं, उनका भाग्य भी सोता है ।"

"तो फिर कहाँ है, मेरी मंजिल ?" राजा जामजशा
अंतरिक्ष से उद्‌बोधन करने वाली देवी से पूछा—"कब त
चलूं ? कहाँ तक चलूं ? माण्डवगढ़ को सैकड़ों कोस दूर छो
आया । अब तो इसी वन में....।"

बीच में ही देवी बोली—

"राजन् ! आगे भी तुम्हें वन में रुकना है । दक्षि
की ओर जाओ । यहाँ से सौ योजन दूर दक्षिण वन
तुम्हारी इच्छा पूरी होगी ।"

"जाऊँगा अम्ब !" राजा ने कहा—"पर वहाँ क
मिलेगा मुझे ?"

देवी ने कुछ कहना चाहा और तभी राजा का घो
बड़ी जोर से हिनहिनाया । राजा की आँख खुल गई । निःश्वा
छोड़ते हुए राजा उठा और मन-ही-मन बोला—"तो यह सप
था । कैसा सपना था यह ? आधी बात ही जान पाया औ
सपना भंग हो गया । अब ? अब क्या करूं ? जितना देवी
बताया, उतना तो करूं । सवेरा हो जाए, बस दक्षिण दि

की ओर ही चलना है।"

सवेरा हो गया। सरोवर के पास राजा नित्यकर्म से निवृत्त हुआ। सवार हो गया घोड़े पर। चार दिन तक बड़ी तीव्रगति से घोड़ा दौड़ाया। सौ योजन पूरे हो गये। एक सघन सुन्दर वन में पहुँच गया राजा। एक वटवृक्ष के नीचे घोड़े को बांध दिया और स्वयं भी बैठकर सोचने लगा—"यहां तक तो आ गया। पर यहां तो कोई नहीं है। यह पहाड़ कितना ऊँचा है। यहां क्या कोई रहता होगा? अब तो यहां कोई नहीं है।" यों सोचते-सोचते राजा का ध्यान एक ओर गया। उधर वापी के पास एक स्त्री बैठी थी। कुतूहलवश राजा उस स्त्री के पास पहुँच गया और बोला—

"कौन हो तुम? दुःख की मारी लगती हो? किसी सार्थ से बिछुड़ गई हो क्या? ऐसे बड़े वन में तुम्हें अकेला देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है।"

स्त्री ने अपने ओठों पर तर्जनी ऊँगली रख कर राजा को संकेत दिया कि बोलो मत। चुप रहो। फिर पर्वत की ओर हाथ उठाकर पुनः संकेत से समझाया कि इधर से खतरा है। स्त्री के वर्जने पर राजा मौन तो हो गया, पर उसके मन में अतृप्त जिज्ञासा की बेचैनी बढ़ गई। अब वह अपने मन से ही प्रश्न करने लगा और उस स्त्री के विषय में तरह-तरह के अनुमान लगाने लगा। कुछ ही देर बीती कि पहाड़ की ओर बड़ी जोर का अट्टहास हुआ। अब अनचाहे ही वापी के पास बैठी स्त्री के मुंह से ये शब्द एकाएक निकल पड़े—

"कहीं छिप जाओ। बड़ा भयंकर राक्षस आ रहा है।"

कहाँ छिपता राजा ? उसने पहाड़ के ऊपर से ए
भीमकाय निशाचर को आते देखा तो भयवश वापी में ही कू
पड़ा। अथाह पानी था वापी में। जाने कहाँ पहुँचा राजा
साँस रुक जाने से वह बेहोश हो गया। बहुत देर बाद जब उ
होश आया तो देखा कि वह एक फेनिल शय्या पर लेटा है।
जिस स्थान पर उसकी शय्या है, वह एक रत्नजटित भवन है
और वहाँ तरह-तरह के नृत्य-नाटक हो रहे हैं। राजा उठक
बैठा हो गया और देवांगना-किन्नरियों का नृत्य देखने लगा
नृत्य की समाप्ति के बाद एक देवी उसके पास आई औ
बोली—

"अब कैसी तबीयत है तुम्हारी ? वापी में डूबने से तु
बेहोश हो गये थे। मैं तुम्हें यहाँ ले आई। कुछ इच्छा हो त
कहो।"

"लेकिन तुम कौन हो ?" राजा ने पूछा—"यहाँ क्य
ले आई मुझे ? मुझे तो उसी स्त्री के पास पहुँचा दो, जहाँ
मैं वापी में कूदा था। जाने कौन है वह स्त्री, और कौन
वह राक्षस ?"

देवी बोली—

"मेरी पूछते हो तो सुनो। मैं इन्द्राणी देवी की सखी
दासी त्रिदशी देवी हूँ। परोपकार की भावना से मैं तुम्हें यहाँ
ले आई। अब जहाँ कहोगे, वहीं पहुँचा दूंगी।"

राजा बोला—

"देवी ! अब मेरी इच्छा इन्द्राणी देवी से मिलने की
। मुझे उनसे मिला दो। मैं उनसे ही कुछ मागूंगा।"

देवी बोली—

"वे तो पूर्णिमा की रात को मिलेंगी। जहाँ से तुम
ाये हो, उसी वन में पूनम की रात वे हम सब सखियों के
ाथ नृत्य करने आती हैं।"

"पूनम की रात ?" राजा ने कहा—"तब तो पच्चीस
दन तक प्रतीक्षा करनी होगी। देवी ! तुम मुझे वापी से
ाहर उस दुखिया स्त्री के पास ही पहुँचा दो। मैं उसका दुःख
र करना चाहता हूँ। जिस समय मैं उससे कुछ पूछ रहा
ा, तब तो सूर्यास्त होने वाला था। वही समय राक्षस के
ाने का होगा। तभी उसने कुछ नहीं बताया था। दिन में
ो बतायेगी ही।"

देवी बोली—

"तुम उस राक्षस को भी मारोगे। मैं तुम्हें चार
टिकाएँ देती हूँ। ये तुम्हारे बड़े काम आयेंगी।"

यह कह त्रिदशी देवी ने राजा को चार गुटिकाएँ दीं
ौर उनके अलग-अलग गुण बताये कि पहली गुटिका को मुंह
 रख लेने से तुम थकोगे नहीं। प्रतिद्वन्द्वी कितना ही बलवान
ो, कभी-न-कभी तो वह थकेगा ही और तुम कभी नहीं
कोगे। दूसरी गुटिका हाथ में लेने से अभेद्य द्वार भी अपने
ाप खुल जायगा। तीसरी गुटिका हर प्रकार के विष का
िवारण करेगी और चौथी गुटिका दिशा ज्ञान बताने वाली

है। राजा ने चारों गुटिकाओं के गुण समझकर सम्हाल र
रख लिये। देवी ने तुरन्त उसे वापी के बाहर पहुँचा दिया
दिन के उजाले में राजा ने पुनः अपना घोड़ा ज्यों-का-त्यों बं
देखकर सोचा, जैसे एक रात सुन्दर सपना देखकर बीती हो
धीरे-धीरे चलकर राजा दुखिया स्त्री के पास पहुँचा। पूर्वा
का समय था। तभी देवी सरस भोजन के दो थाल दे गयी
राजा ने उस स्त्री से भोजन करने का आग्रह किया। प
उसने भोजन नहीं किया। कारण बताया कि अपने अभिग्रह
अनुसार उसने अन्न-जल का त्याग कर रखा है। रा
बोला—

"तब तो आप पर बहुत संकट है। तभी तो आप इत
दुर्बल हो गयी हैं। यदि गोपनीय न हो तो मुझे अपनी कहा
सुनाओ।"

स्त्री बोली—

"सुना दूंगी। सुनाने में क्या जाता है ? पर मेरा दु
तो मेरी मौत के साथ ही समाप्त होगा।"

"मैं प्राण देकर भी आपका दुःख दूर करूँगा। अब
मैं भी आपकी बात सुनकर ही भोजन करूँगा।"

स्त्री अपनी कहानी सुनाने लगी—

"धर्मभ्रात ! जैसे तुम राजा हो, वैसे ही मैं भी कि
राजा की बेटी और किसी राजा की रानी हूँ। भाग्य ने य
मुझे ऐसी जगह पटक दिया है, जहाँ न मैं जीवितों में हूँ अ
न मरी ही हूँ।"

कहते-कहते रानी की आँखों में आँसू छलक आये। आँसू पोंछते हुए रानी ने पुनः कहा—

"कनकपुर के राजा कनकसेन मेरे पिता हैं और शौरीपुर के राजा विजयसेन मेरे स्वामी हैं। मेरा नाम विजयश्री है। एक दिन ऐसा हुआ कि यही राक्षस जो यहां पर्वत गुफा में रहता है, आधी रात को अट्टहास करता हुआ राजभवन पहुँचा, मेरे स्वामी को जगाकर इस असुर ने कहा कि राजा तू मुझे अपनी रानी दे दे। नहीं तो मैं तेरा सर्वनाश कर दूंगा। असुर की ऐसी अनुचित मांग मेरे पति भला कैसे सुन पाते? कोई भी पति नहीं सुन सकता। मेरे पति राजा विजयसेन ने राक्षस को ललकारा। उस दिन यदि युद्ध होता, कोई एक अवश्य मारा जाता। पर वाह रे मेरा भाग्य! मेरे पति का हृदय बदल गया। उन्होंने सोचा, मेरी रानी परपुरुषगामिनी और व्यभिचारिणी है। निश्चय ही इसका राक्षस से पूर्व प्रेम होगा। तभी तो यह रानी को लेने आया है। वरना क्या यों ही आ जाता? यह तो बड़ा गहरा रहस्य खुला। यों विचार पलट जाने से मेरे स्वामी ने राक्षस से नरम पड़ कर कहा, ले जाओ भाई! राक्षस ने मेरा हाथ पकड़कर खींचा। मैं अपने पति के चरणों से लिपट कर बोली—मुझे बचा लो स्वामी! पति ने मुझे पैरों से धक्का देकर कहा—दूर हो जा व्यभिचारिणी! अब क्यों त्रियाचरित्र रचती है? मैं तो सब जानता हूँ।

"धर्मभ्रात! यह राक्षस मुझे जबरन यहां ले आया।

मैंने वहुत हाथ-पैर पटके, पर कुछ नहीं कर पाई। यहां मैंने इससे स्पष्ट कह दिया कि यदि मेरे साथ वल प्रयोग किया तो अपनी जीभ खींचकर प्राण दे दूंगी। मैं सती नारी हूँ। तू मेरी लाश ही पा सकता है, मुझे नहीं।

"राजन् ! इस पर राक्षस ने कहा कि कुछ ही दिनों में तेरे होश ठिकाने आ जायेंगे। अपने आप समर्पण करेगी। तभी से राक्षस मेरे राजी होने की प्रतीक्षा करता है। मैंने उसी दिन से अन्नजल त्यागकर नवकार मन्त्र का स्मरण प्रारंभ कर दिया है। वस, यही है, मेरी राम कहानी।"

पूरी व्यथा-कथा सुनने के वाद माण्डवगढ़ के राजा जामजशा ने पूछा—

"इस समय कहाँ होगा, वह पापी असुर?"

रानी ने वताया—

"सवेरे ही निकल जाता है। नर-भक्षण करके पहाड़ी गुफा में सोता है। संध्या को यहाँ चला आता है और रातभर मेरी खुशामद करता है। इस समय दोपहर है। गुफा में पड़ा सो रहा होगा।"

"आज की रात वह देखेगा ही नहीं।" राजा ने कहा—"मैं अभी जाकर उसे मारता हूँ।"

आश्चर्य के साथ रानी ने कहा—

"तो क्या तुम मारने जाओगे उसे? नहीं तुम मत जाना वह वड़ा वलवान है। तुम्हें मार कर खा जायेगा।"

राजा वोला—

"धर्मभगिनी ! काल से बड़ा बलवान कोई नहीं होता। काल के अनेक रूप होते हैं। कभी-कभी तो महातुच्छ चींटी भी काल बन जाती है। यदि मेरा काल उसके हाथ में है तो मैं उसके हाथों से मरूँगा। और यदि उसे ही मेरे हाथों से मरना है तो मरेगा ही। विधि-विधान को अटल मानकर तुम निश्चिन्त रहो।"

"णमो अरिहंताणं" का उच्चारण करते हुए राजा पहाड़ पर पहुँचा। गुफा ढूंढ ली उसने। गुटिका के प्रभाव से गुफा-द्वार पर अटकी भारी शिला अपने आप सरक गयी। निर्भीक होकर राजा भीतर घुस गया। नरभक्षी असुर सो रहा था। राजा ने उसे आवाज दी—

"उठ जा असुर ! तेरा काल एक मानव के रूप में आ गया है।"

राक्षस उठा। राजा को ऐसे देखा, जैसे सिंह हरिण को देखता है। फिर अट्टहास करके बोला—

"आज मैं थोड़ा भूखा भी रह गया था। तुझे खाकर अपनी भूख मिटाऊँगा।"

राजा तुरन्त बाहर आया। राक्षस ने उसका पीछा किया। गुफा के बाहर दोनों भिड़ गये। राजा विजयसेन की रानी दोनों का तरह युद्ध दूर से देखने लगी। एक प्रहर तक भागा-दौड़ी और उठा-पटकी हुई। राक्षस थक गया, कभी तो थकता ही। पर गुटिका के प्रभाव से राजा जामजश नहीं था। अन्त में राजा राक्षस के ऊपर चढ़ गया और कृपाण

निकाल कर बोला—

"दो-चार साँस और ले ले। तेरा अन्त आ गया। ३
अपने को अमर समझकर भारी भूल की। अरे अधम ! अ
तो कोई नहीं है। एक सन्नारी पतिव्रता का हरण करके ३
कितना बड़ा पाप किया है ?"

राक्षस गिड़गिड़ाया। गिड़गिड़ाकर बोला—

"अरे राजा ! शरण में आये वैरी को भी छोड़ देते
मैं तो तुम्हारा वैरी भी नहीं हूँ। अब तो मैं तुम्हारी श
हूँ। जो कहोगे सो, करूँगा। मांस-भक्षण कतई त्याग दूंग
आज से तुम्हारा दास बनकर रहूँगा। प्राणों की भिक्षा दे
मुझे।"

राजा को दया आ गयी। छोड़ दिया राक्षस को। f
देश दिया—

"जितने जीव तुम्हारी कैद में हैं, सब को मुक्त क
उनके घर पहुँचा दो। फिर आओ तुम्हें दूसरा व
बताऊँगा।"

राक्षस ने राजाज्ञा का पालन किया। सबको पहुँचा
आया तो राजा जामजशा ने दूसरा आदेश दिया—

"अब शौरीपुर के राजा विजयसेन को उठा लाओ।

आ गया राजा विजयसेन। राजा जामजशा ने :
अपनेपन से फटकारा—

"भगिनीपति ! रखते हो, मेरी धर्म बहिन विजय
को ? इसने अब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं किया। जीभ खीं

र प्राणान्त करने की धमकी दी राक्षस को। जानते हो
यों ? इसलिए कि यह पतिव्रता है। तुमने अपनी पतिव्रता
त्नी पर सन्देह करके अच्छा काम नहीं किया है। बोलो,
या कहोगे अब ?"

राजा विजयसेन बहुत लज्जित हुआ। बोला—

"तुम बहन-भाई—दोनों ही मुझे क्षमा करो। मैंने
ड़ा भारी अपराध किया है। यदि क्षमा नहीं करते तो जो
ी दण्ड दोगे, मैं स्वीकार करूँगा।"

"दण्ड ? हाँ दण्ड तो दूँगा ही।" राजा जामजणा ने
हा—"नारी के प्रति सबसे बड़ा अपराध है, उसके चरित्र को
ांछित करना, तुमने यह घोर अपराध किया है। इसका दण्ड
ही है कि अब रानी विजयश्री से क्षमा माँगकर अपने साथ
े जाओ।

"यह भी कोई दण्ड हुआ ?" राजा विजयसेन ने हँसकर
हा—"तुम नर के रूप में कोई देव ही हो।"

राजा जामजणा ने कहा—

"देव होना क्या बहुत अच्छी बात है ? मनुष्य के भी
ो कुछ कर्त्तव्य होते हैं। मनुष्य, मनुष्य ही बना रहे, यही
या कम है ? अब छोड़ो इन बातों को। अब जायें आप।"

राजा विजयसेन ने कहा—

"अब तो तुम्हें भी मेरी एक बात माननी पड़ेगी।
न्कार तो तुम कर ही नहीं सकते। क्योंकि मेरी बात
ुम्हारी बहिन के मन की बात भी होगी। बात यह है कि

अब तुम्हें भी हमारे साथ शौरीपुर चलना होगा।"

तीनों शौरीपुर पहुँचे। कुछ दिन तक राजा जामज विजयसेन राजा का मेहमान बनकर रहा। फिर अनुम लेकर वह पुनः यथास्थान वापी के निकट आ गया और व वृक्ष के नीचे डेरा जमाया। राक्षस उसकी सेवा में रहने गया। स्मरण किया तो इन्द्राणी देवी की दासी सखी भोजन लेकर आ गई। राजा ने उससे कहा—

"देवी! अब तो परसों ही पूर्णिमा है। पुनः याद दि रहा हूँ। मुझे इन्द्राणी के दर्शन करा दो। तुम्हारी अनुश से ही वे मुझे पुत्र प्राप्ति का वर देंगी।"

देवी बोली—

"राजन्! मुझे तुम्हारा दुःख मालूम है। मैं स नवती नामक इन्द्राणी देवी से तुम्हारी बात कहूँगी अ उनका आदेश प्राप्त करके तुम्हें उनके पास ले जाऊँगी। य वे तुम पर प्रसन्न हो गईं तो तुम्हारे सब संकट दूर जायेंगे।"

दो दिन और बीते तो राका रजनी भी आ गई। य स्थान सब देवियों के साथ देवियों की रानी इन्द्राणी आय बड़ी देर तक नृत्योत्सव हुआ। चांदनी में स्नान करते जब सब बैठकर वस्त्र बदलने लगीं तो राजा जामजशा परिचित देवी ने इन्द्राणी से कहा—

"स्वामिनी! आपके दर्शनों की आकांक्षा में एक र लगभग एक महीने से आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। सन

पुत्र से वह बहुत दुःखी है। लोक विश्वास के अनुसार उसकी प्रजा सवेरे-सवेरे अपने अपुत्री राजा का मुख देखना भी नहीं चाहती।

"स्वामिनी! आपके द्वार से अभी तक कोई खाली और निराश नहीं लौटा। आपकी दया-अनुकम्पा का मैं उसे आश्वासन दे चुकी हूँ। मेरी बात राखो माँ! और उसका संकट दूर करो।"

इन्द्राणी हँसकर बोली—

"त्रिदणी! तू ऐसे ही काम करती फिरती है। अब तूने कह ही दिया है तो मैं उसका काम तो करूँगी, पर पहले उसकी परीक्षा अवश्य लूँगी।"

यह कह नागेन्द्र देव की पत्नी इन्द्राणी देवी वटवृक्ष के नीचे पहुँची और एक षोडशी बाला का रूप बनाकर बोली—

"ओहो, मेरा भाग्य कैसा है कि आप मुझे यहीं मिल गए। भाग्य कृपा से ही मैंने आपको पहचान लिया कि आप नाण्दवगढ़ के यशस्वी राजा जामजशा हैं।

"राजन्! मैंने किशोर वय में ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं विवाह करूंगी तो आपसे ही करूंगी, नहीं तो कुंवारी ही रहूँगी। यद्यपि आप मानव हैं और मैं देव कन्या पर विवाह तो मन का होता है। मेरा मन आप पर है तो आप मेरे लिए देव से भी बढ़कर हैं।"

राजा बोला—

"देवी! तुच्छ मानव एक देवी का पति कैसे बन

सकता है ? फिर मैंने तो सात विवाह कर लिये। इ
विवाहों में भी निराशा ही मिली। छोड़ो ये बातें। मैं कि
और ही चिन्ता में घुल रहा हूँ।"

षोडशी बाला रूप में देवी इन्द्राणी बोली—

"अवधिज्ञान के बल से मैं आपकी चिन्ता भी जान
हूँ। आप बस हाँ कह दें, तो मैं आपको सन्तान-सुख भी
सकती हूँ। आपको मेरी एक छोटी-सी बात भर माननी
वह यह कि आप अरिहंत धर्म का त्याग कर दें। बस फि
मैं आपकी और पुत्र भी आपके हो जायेंगे।"

राजा जामजशा देवी की शर्त सुनते ही उत्तेजित
गया। बोला—

"क्या कहती हैं आप ? देवी होकर भी आप असं
। सम्भव नहीं बना सकतीं। जानती तुम्हारा देवत्व
के सहारे खड़ा है ? आज में जितना सुखी हूँ, भाग्य
के ही कारण और सभी दुःख मेरे कृतपापों का ही फल
अब मैं तुम्हारी एक नहीं सुनूंगा। चली जाओ यहाँ से।
त्यागकर तो मैं इन्द्र का पद भी नहीं चाहूँगा।"

अब देवी ने भय दिखाया—

"राजन् ! जानते हो, मेरी बात न मानने का
परिणाम हो सकता है ? मैंने तुमसे विवाह करने का निश
किया है और यह भी निश्चय किया है कि तुमसे धर्म छु
कर ही विवाह करूंगी। मेरी शक्ति और बात न मानने
परिणाम सोच लो। तबाह कर दूंगी।"

"मौत से बड़ी सजा तुम दे भी क्या सकती हो ?"
राजा ने हँसकर कहा—"धर्म के लिए मर मिटना धर्मवीरों के लिए एक अवसर होता है। मैं भी इस अवसर को खोना नहीं चाहता।"

परीक्षा पूरी हो गई। राजा जामजशा की धर्मदृढ़ता देख इन्द्राणी देवी गद्गद् हो गई। अपने रूप में प्रकट होकर बोली—

"राजन् ! मैं तुम्हारी परीक्षा ले रही थी। जिस इन्द्राणी को देखना चाहते थे, मैं वही हूँ। वर मांगो।"

राजा देवी के चरणों में गिर पड़ा। बोला—

"मैं धन्य हुआ अम्ब ! तुमसे क्या छिपा है ? मन की इच्छा पूरी करो जगदम्बे !"

देवी ने कहा—

"राजन् ! छह महीने बाद तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। तब तक तुम्हें क्या करना है, सो बताती हूँ। आज से तुम्हारे पुण्य प्रकट होंगे। तुम्हें बारह बेला आयम्बिल तप करने हैं और तेरह तेला। फिर अट्ठम तप करना है। इसी क्रम से छह माह तक धर्माराधन करो। उसके बाद पुनः मेरे पास यहीं आना।"

यह कह देवी अन्तर्धान हो गई। वापी के निकट रहकर राजा व्रत-उपवास करने लगा। असुर उसकी सेवा करता रहा। छह महीने पूरे हुए। पद्मिनी नाम की इन्द्राणी देवी पुनः प्रकट हुई और उसने सात आम्रफल राजा को देकर

कहा—

"राजन् ! ये फल अपनी रानियों को देना। इनके
से तुम्हारी सातों रानियाँ गर्भवती होंगी और तुम तो
ही पुत्र चाहते थे, जबकि अब तुम सात पुत्रों के
बनोगे।"

इतना कह देवी अन्तर्धान हुई और राजा घोड़े
सवार होकर माण्डवगढ़ नगर की ओर चल दिया। दूरी
थी। सैकड़ों कोस-योजन जाना था। कई दिन-रात का
था। लेकिन राजा का मन तो कभी का माण्डवगढ़ पहुँच
था। कुछ ही दिन बाद वह तन से भी पहुँच जायगा।

3

'अरे ! बाग में यह कौन यात्री आया ? लगते तो
... राजा हैं। हाँ, वही तो हैं। वही श्याम वर्ण घोड़ा है,
...स पर सवार होकर इन्होंने माण्डवगढ़ छोड़ा था।"
... अपने से ही बातें करते-करते माण्डवगढ़ के राजोद्यान
। माली राजा जामजणा के निकट आया। राजा का मुख
...री ओर था। वे जलविहार कुण्ड पर बैठे सद्यःविकसित
...लों की शोभा देख रहे थे। माली ने पास आकर कहा—

"अन्नदाता की जय हो ! आज का प्रभात बड़ा शुभ
। आप रात ही आये होंगे। रात भर उद्यान में रहे ? सेवक
... आज्ञा दी होती तो....!"

मुंह फेरे-फेरे ही राजा ने कहा—

"उद्यानरक्षक ! आज का प्रभात मंगलमय तुम्हारे
... कैसे हो गया ? क्या तुम लोक-विश्वास से दूर रहते
? तुम देखोगे मेरा मुंह ?"

भगवान की शपथ खाकर कहता हूँ अन्नदाता, कि
...गले जन्म में भी मैं आपकी प्रजा बनने का आकांक्षी हूँ।
...ग तो मूर्ख हैं, जो अपने कर्म नहीं देखते और अपुत्री राजा
... प्रभात मुख-दर्शन अशुभ मानते हैं। अन्नदाता ! मैं तो

रात दिन इस उद्यान में शकुनों (पक्षियों) के बीच में रह
इसलिए शकुन-अपशकुन (शुभाशुभ संकेत) की वैसे भी
परवाह नहीं करता। इसी उद्यान में दसियों वार मैंने मु
की देशना सुनी है। और फिर जो आपको निस्संतान
उससे बड़ा मूर्ख है ही कौन ? माण्डवगढ़ की प्रजा क्या
सन्तान नहीं है ?"

राजा जामजशा ने माली की ओर मुख फिरा
वोले—

"सव तुम्हीं जैसे तो नहीं हैं माली ! लोकविश्वा
भय से मैं सवेरे-सवेरे तुम से मिलना नहीं चाह रहा
तुमने मेरी शंका तो दूर कर दी, पर मुझे तो सभी
की वात सुननी पड़ती है, सो इतने महीने राजधानी
।

"माली ! अव मैं सफल मनोरथ होकर लौटा हूँ
एक-दो नहीं, सात-सात राजकुमारों से राजभवन भर जा
तुम नगर जाओ और महामन्त्री फूलसिंह को हमारे आ
संवाद पहुँचाओ।"

माली दौड़ा-दौड़ा गया और महामन्त्री को सव
वता दिया। फिर तो यह संवाद विजली की तरह पूरे
में फैल गया। रोनी चाण्डालिनी तक भी बात पहुँच
अव तो लोग रोनी की भी प्रशंसा करने लगे कि रोनी
कारण राजा ने सन्तान प्राप्ति का वरदान प्राप्त कर लि
रानियाँ शृंगार करने लगीं। पूरा नगर ही सजाया

सभी मन्त्रियों, सभासदों और नगर के विशिष्ट जनों को साथ लेकर महामात्य फूलसिंह उद्यान पहुँचे। आज वे फूल से फूले हुए थे। बड़ी धूमधाम से राजा ने नगर में प्रवेश किया। यथासमय विशेष दरबार लगा। राजा ने अपनी यात्रा का वृत्तान्त सबको आदि से अन्त तक सुना डाला। फिर वे यथासमय अन्तःपुर में पहुँचे।

सभी रानियाँ एक ही जगह इकट्ठी थीं। पटरानी दामवती अपने भवन में थी। वह यह सोचकर नहीं आई कि सबके साथ मिलने में मेरी उपेक्षा होगी। सौतें छींटा-कशी करेंगी। उनका एक गुट रहता है। वे मेरे हैं तो क्या मेरे पास नहीं आयेंगे? वे भी तो जानते हैं कि इनके साथ मैं नहीं रहती। इधर राजा ने भी दामवती की उपस्थिति-अनुपस्थिति पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे ज्यादा देर बैठे भी नहीं। बैठते भी कैसे? राजसभा संचालन का काम सबसे पहले था। रानियों के पास तो रात में भी बैठ सकते हैं। यह सोच राजा ने देवी प्रदत्त सातों फल एक स्थान पर रखकर कहा—

"एक-एक सातों बाँट लेना। सातों के पुत्र होंगे। देवी का कथन मिथ्या नहीं होगा। मैं चलता हूँ।"

अपनी बात कहकर राजा पुनः राजसभा पहुँचे। एक-एक फल सबने उठा लिया। दामवती रानी के हिस्से का एक बच गया। एक बोली—

"इसे कौन के पास पहुँचायें?"

दूसरी बोली—

"हुँअ ! क्या होगा पहुँचाकर ? हम ही बाँट खायेंगी। उसे तो बाँझ ही रहने दो।"

"ठीक है-ठीक है।" कहकर सब सहमत हो ग सातों फल छः रानियों ने ही खाये। दामवती को कुछ न मिला। होनहार ही ऐसी थी कि दामवती रानी को मि फलों की गुठलियाँ। दामवती की दासी ने गुठलियां ल स्वामिनी को देते हुए कहा—

"आपने कहा था न कि मेरे हिस्से का फल न मिले गुठलियाँ ही ले आना। सो ले आई हूँ। ये भी उनसे माँ नहीं पड़ीं। बाहर पड़ी थीं, सो उठा लाई।"

रानी दामवती बोली—

"दासी ! फल भी गुठलियों से ही तो बनते हैं। गु तो बीज होती है। भगवान् पार्श्वनाथ का स्मरण कर सबको ही खाऊँगी। तू धोकर सबको एक जगह पीस दे।

रानी ने गुठलियों का चूर्ण खाया। कड़वाहट के का आधा भाग ही खा पाई। शेष आधा घोड़ी के आगे डल दिया। भाग्य की बात—आठों ही गर्भवती हुईं। सातों रानि और आठवीं घोड़ी। नौ महीने बीते तो फल खाने वाली छ रानियों ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। देवी के वरदान फ के साथ उन छहों को कपट-ईर्ष्या का फल भी साथ ही मि गया, अर्थात् छहों के राजदुलारे काने-कुबड़े, अंधे-लूले औ अपंग हुए। करनी व्यर्थ कभी नहीं जाती। नौ महीने से कु

न ऊपर बीत जाने पर रानी दामवती ने सुन्दर पुत्ररत्न को
न्म दिया। ऐसा कि जैसे चाँद का टुकड़ा हो अथवा प्राची
शा ने बाल रवि को जन्म दिया हो। फिर पाँच महीने
और बीते तो घोड़ी ने भी एक बछेड़ा दिया। चौदह महीने
घोड़ी ने बछेड़ा जन्मा।

रानी दामवती ने अपने पुत्र का रहस्य छिपाया। किसी
को नहीं बताया कि मेरे पुत्र हुआ है। अपनी विश्वस्त दासियों
सहयोग से उसने पण्डित को बुलाकर नामकरण संस्कार की
विधि पूरी की और उसका नाम रखा 'गजसिंह कुमार'। अब
रानी को अपने पति की उपेक्षा का भी कोई दुःख नहीं था।
ति का साकार प्रेम चन्द्रखण्ड-सा राजकुमार उसकी गोद में
ा। इधर उसकी सौतें—छहों रानियाँ भी खुश थीं। लेकिन
उनकी खुशी का कारण यह था कि दामवती बाँझ ही रह
गई। काने-कुबड़े हुए तो क्या, हमारे पुत्र तो हैं। ईर्ष्यालु
अपने अभाव में इतना दुःखी नहीं होता, जितना कि दूसरों के
अभाव में सुखी होता है। यही हाल इन रानियों का था।

दिन बीतते रहे। महीने बीते। वर्ष भी बीत गए।
पाँच वर्ष बीते। गजसिंहकुमार पाँच वर्ष का हो गया।
बछेड़ा भी पाँच वर्ष का था। अब वह पूरा अश्व था। पशु-
बच्चे तो जन्म से ही दौड़ने लगते हैं और पाँच वर्ष में तो
वे पूरे हो जाते हैं। रानी गजसिंह को बताती—बेटा, यह
अश्वसुत तेरा सहोदर भाई-जैसा है। यह भी देवी के फल से
जन्मा है। राजकुमार भी घोड़े को बहुत प्यार करता। घोड़ा

भी बहुत समझदार था। पशु होते हुए भी उसमें मनुष्य
सा विवेक था। जब से कुमार ने बोलना-समझना शुरू कि
था, अर्थात् लगभग ढाई वर्ष की उम्र से रानी ने उसे घर
ही स्वयं पढ़ाना शुरू कर दिया। गजकुमार संस्कारी बा
था ही, सो पाँच वर्ष का होते-होते वह बड़ों को अच
डालने वाली बातें जान गया था। माता द्वारा दी गई शि
उसने मन्त्र की तरह हृदयंगम कर ली थीं। पहली गु
माता ही होती है। माता तो ऐसी विलक्षण गुरु होती
गर्भकाल में ही अपने गर्भस्थ शिशु पर अच्छे संस्कार
में समर्थ होती है। माता जैसा चाहे, वैसा ही अपनी
को बना सकती है। वीर भी माता के बनाये बनते
कायर-कपूत भी माता के बनाये बनते हैं। दामवती ने
पुत्र को सच्चे अर्थों में सच्ची माता का सपूत बनाया थ

गजकुमार रत्नों की जड़ी गोल-गोल टोपी पहनत
रंग की टोपी की परिधि में से निकलते काले
बाल बड़े अच्छे लग रहे थे। देह पर पीले रंग का
था। उठी हुई देह के कारण पाँच वर्ष का गजसिंहकुम
वर्ष का-सा लगता था। पैरों में छोटे-छोटे मखमल के
(जूते) थे। एक दिन मन्त्री फूलसिंह रानी दामवती के
आया। रानी के पास ही गजसिंह बैठा था और वह
के कटोरे में दूध पिला रही थी। मन्त्री ने रानी को
किया और पास ही रखी चौकी पर बैठ गया। चौकी
की थी। बैठने के बाद मंत्री ने रानी से कहा—

"महारानी जी ! आपका कुमार ही माण्डवगढ़ की
ा की आशा का केन्द्र है। अब तक मैंने आपकी आज्ञा मानी
कुमार को राजसभा में नहीं ले गया। पर आज तो आप
ी प्रार्थना मानें और राजकुमार को मेरे साथ भेज दें।"

रानी बोली—

"महामन्त्री ! राज्य भर में तुम्हीं इस रहस्य को
नते हो कि मैं भी पुत्रवती हूँ। या फिर मेरी विश्वस्त
्वरी दासियाँ जानती हैं। तो क्या अब तुम अपने वचन
ा भूलकर इस रहस्य को प्रकट करोगे ? यह यह रहस्य
कट हो गया तो मेरे पुत्र का भला नहीं है। इसकी विमाताएँ
ा इसके प्राण लेने पर तुल जायेंगी। जाने वे क्या-क्या
ड्यन्त्र रचेंगी ? उनकी दृष्टि में तो मैं बाँझ ही हूँ। तभी
ा सब फल उन्होंने ही खाये थे। भगवान पार्श्वनाथ की कृपा
ी, जो मैं जूठी गुठलियों से ही पुत्रवती बन गई।"

मन्त्री बोला—

"महारानी ! आपकी सब बातें सत्य हैं। पर क्या
ार्श्वनाथ प्रभु की कृपा अब नहीं रहेगी ? क्या कुमार के
ुण्य उसकी रक्षा अब नहीं करेंगे ? आप ही बतायें बादलों
ी ओट में सूर्य कब तक छिपा रह सकता ?"

"अभी इसे बड़ा होने दो।" रानी दामवती ने कहा—
"आखिर इसे राजसभा में आप ले जाना ही क्यों चाहते हैं?"

मन्त्री बोला—

"प्रजा का भ्रम दूर करने के लिए। कनकश्री रानी कुमार अन्धा है। रत्नमाला के पुत्र का माथा ही नहीं गोल-गोल सिर है। इसी तरह छहों के छहों का रूप हा स्पद है। सबके सब हास्यरस के आलम्बन हैं और उ बातें हास्यरस का उद्दीपन हैं। जब वे सभा में जाते हैं प्रजा वर्ग के लोग कहते हैं कि इन छहों में कौन ऐसा है, माण्डवगढ़ का भावी शासक बने ? कोई भी तो नहीं। मैं प्रजा के साथ राजा को भी दिखा देना चाहता हूं कि देखो, यह है गजसिंहकुमार—राजा-प्रजा की भावी आ धर्मवती सच्ची माता का सपूत है यह गजकुमार।"

रानी मौन हो गई। मंत्री ने उसके मौन का सही मान लगाते हुए कहा—

"महारानीजी ! आप निश्चिन्त रहिए। जैसे मैं को ले जाऊँगा, उसी तरह इन्हें वापस भी कर जाऊं मेरी मानें, प्रकाशपुंज की किरणें फूटने दीजिए।"

रानी मुस्कराई। दाएँ हाथ की अनामिका उँगली अपनी आंख की कोर से उसने काजल छुड़ाया और कुमा दिठौना लगा दिया। मंत्री ने कुमार का हाथ पकड़ा और सभा ले गया। जब गजसिंहकुमार सभा में पहुँचा तो निगाहें उस पर टिक गईं। कई स्वर उठे—महामात्य के यह देवपुत्र-सा कौन है ? राजा ने पूछा—

"महामात्य ! कौन है यह ? बड़ा सुन्दर बालक है

मन्त्री ने सभी की जिज्ञासा शान्त करने के उद्देश

वर में बताया—

"पृथ्वीनाथ ! यह आपका ही आत्मज और प्रजा की आशा राजकुमार गजसिंह हैं। पट्टमहिषी दामयनी जननी हैं।"

"ओह ! तो हम अभी तक नहीं जान पाये ?" राजा ा—"तो क्या यह भी नहीं जानता कि हम इसके पिता

"जानता है राजन् ! यह जानता है कि आप इसके हैं।"

जानें क्यों राजा को एकाएक ही क्रोध आ गया और —

"यदि यह जानता है तो फिर यह दुरभिमानी है। माता ने क्या हमारा अपमान करने इसे भेजा है ? इसे क्यों नहीं सिखाया कि पिता को अभिवादन किया है। यदि यह मेरा पुत्र है तो इसने मुझे अभिवादन क्यों किया ? पिता के नाते न सही, राजा के नाते और राज- की मर्यादा के नाते इसे अभिवादन करना चाहिए था।"

मन्त्री बोला—

"राजन् ! आखिर बालक ही तो है। बालक नादान है। आपका पुत्र है। इसे क्षमा करें और अपने अंक में ।"

राजा बोला—

"बालक भूल सकता है। लेकिन याद दिलाने पर तो

प्रणाम करना चाहिए ?"

मंत्री कुछ कहना ही चाहता था कि राजा ने उसे रो
कर कहा—

"महामन्त्री ! हमारे प्रश्नों का उत्तर यह छोकरा
देगा।"

मंत्री मौन हो गया और उसने गजसिंह से धीरे
कहा—"प्रणाम करो कुमार ! तुम्हारे पिता भी हैं और रा
भी हैं।"

गजसिंह ने निर्भीकता के साथ कहा—

"राजन् ! आप भी सुनें और सभा भी सुने। कर्त
च्युत पिता भी पिता नहीं रहता और राजा भी राजा न
रहता। आपने पिता की दृष्टि से मेरी माता की भी उपे
की और मेरी भी। राजा की दृष्टि से अन्याय किया। म
देवी ने यही कहा था कि मेरी माँ को फल न दिया जाए

"राजन् ! मैं केवल सात को ही प्रणाम करता
उनमें मेरे प्रणाम की अधिकारिणी सर्वप्रथम मेरी माता क
वती हैं। माता के उपकार से कोई भी जीव उऋण नहीं
सकता। दूसरा प्रणाम तीर्थंकर भगवान् को। तीसरा प्र
उन गुरुदेव को जो अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाते
चौथा प्रणाम मैं जिनधर्म को करता हूँ, जिसकी आराधना
निस्सन्देह जीव का उद्धार होता है। पाँचवां प्रणाम मैं म
के समान ही उपकारिणी धरती माता को करता हूँ, जि
आधार पर समस्त प्राणिजगत् है। छठा प्रणाम मैं अपने

खड्ग को करता हूं, जिसे निर्बलों का बल मानकर मैंने धारण किया है और सातवां प्रणाम मैं सहोदर तुल्य उस अश्व-सुत को करता हूं, जो उसी फल बीज से उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं। इसके अतिरिक्त आठवां कोई ऐसा नहीं है, जिसे मैं प्रणाम करूं।"

गजसिंह की ऐसी खरी, विवेकपूर्ण, निर्भीकता से पुष्ट और तर्कसंगत बातें सुनकर लोग धीरे-धीरे धन्य-धन्य कहने लगे। सब बड़े प्रसन्न हुए। कहने लगे—"कैसा होनहार तेजस्वी बालक है। इतनी छोटी उम्र में यह हाल है। कौन कहेगा कि यह पांच वर्ष का है। इसकी मानसिक दशा तो सोलह वर्ष की जैसी है।"

सब तो प्रसन्न हुए, पर राजा के हृदय में कुमार की बातें तीर-सी चुभ गईं और वह अपना क्रोध प्रकट करने के लिए शब्द पकड़ने लगा। जब राजा से नहीं रहा गया तो बोला—

"रे कुलांगार! अपने पिता को नमन न करने वाला तू मेरा कैसा पुत्र है? जी चाहता है, अभी तेरा शिरोच्छेद कर दूं।"

गजकुमार ने तपाक् से कहा—

"पिता का कर्तव्य न निभाने वाले को मैं क्यों पिता मानूं? आपने मेरे साथ पिता जैसा किया ही क्या है? अपनी माता की उपेक्षा और अवमानना करने वाले को मैं हरगिज नमन नहीं करूंगा।"

इतना सुनते ही राजा जामजशा आपे से बाहर हो गया और तुरन्त कोप से बाहर खड्ग खींच कर बोला—

"ठहर जा ! अभी तेरा शिरोच्छेद करता हूँ।"

क्रोधातुर राजा नंगा खड्ग लिए सिंहासन से नीचे उतर आया। सभा में हाहाकार मच गया। चतुर मंत्री फूलसिंह ने राजा का हाथ पकड़कर कहा—

"यह क्या करते हैं नरराज ? इसे मारकर अपयश के सिवा आपको क्या मिलेगा ? पराक्रम तो बराबर वाले प्रतिद्वन्द्वी पर दिखाया जाता है। खेल-खेल में बालक पिता की मूँछें तक पकड़ लेते हैं, फिर भी पिता मुदित होते हैं। आज पहला दिन है। बालक ही तो है यह। धीरे-धीरे सब समझ जायगा।"

राजा का हाथ ढीला पड़ गया। खड्ग को कोष में डालते हुए उसने मंत्री से कहा—

"मंत्री ! तुम्हारे कहने से इसे छोड़ रहा हूँ। इसे मेरी आँखों के सामने से ले जाओ। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए मैं इसे जीवित रखूंगा। आज सबके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसे एक दिन नमन करना ही पड़ेगा। आज नहीं तो बड़ा होने पर मैं इसका शिरोच्छेद अवश्य करूँगा।"

भवितव्यतावश राजा का विचार एकाएक ही पलट गया। राजकुमार को अभी जीवित ही रहना था, इसलिए राजा की प्रतिज्ञा एक बहाना बन गई। राजकुमार को लेकर मंत्री रानी दामवती के पास पहुँचा और पूरा सभा-प्रसंग सु

ला। तब मंत्री के सामने रानी ने गजसिंहकुमार को
झाया—

"बेटे ! तूने नादानी का काम किया। पिता के नाते न
ो तो राजा के नाते उन्हें प्रणाम करने में क्या घट जाता ?
ले ! कोई अपने कर्तव्य से हटे तो हटता रहे, पर हमें तो
ीं हटना चाहिए। वे मेरे पति हैं। उन्हीं के नाते मैं रानी
और तू राजकुमार है। यदि प्रत्यक्ष में वे पिता का कर्तव्य
ीं निभा रहे हैं तो परोक्ष में तो उन्हीं के वैभव से तू पल
ा है। मुझे तेरी बातें अच्छी नहीं लगती।"

"तो माँ ! तुम भी मुझे ही दोष देती हो ? जिस काम
ो मेरा विवेक स्वीकार नहीं करता, उसे मैं कैसे करूँ ?"

रानी दामवती कुछ कहना ही चाहती थीं कि मंत्री ने
मार से कहा—

"अच्छा जाओ कुमार ! तुम खेलो। महारानी से मैं
तें करता हूँ।"

जब कुमार चला गया तो मंत्री ने रानी से कहा—

"महारानीजी ! बात तो आपकी ठीक है। पर बच्चा
सा अनुभव करता है, वैसा ही तो करेगा। इस समय वह
मझाने से मानेगा नहीं, बल्कि उसके भीतर विद्रोह भर
येगा। आप ही सोचें कि महाराज अन्य राजपुत्रों को गोद में
ठाते हैं। लाड़ लड़ाते हैं और पूरा प्यार देते हैं, इस अन्तर
ो, दुहरे व्यवहार का प्रभाव बाल-मन पर तो पड़ता ही है।
ब आप सब कुछ मेरे ऊपर छोड़िए। कुमार पाँच वर्ष के हो

गए हैं। मैं इनकी पढ़ाई की व्यवस्था करता हूं। किसी
बहत्तर कलाओं में दक्ष होकर निकलेंगे तो देखना जगत्
सामने झुकेगा।"

"यह तो आपने मेरे ही मन की बात कह दी।" र
दामवती बोली—"यहाँ रहेगा तो विमाताओं की आंखें
खटकता रहेगा।"

राजकुमार गजसिंह की शिक्षा का भार मंत्री फूल
अपने ऊपर ले लिया और कुमार को नगर के यशस्वी आ
को सौंप दिया। गजसिंह प्रतिभावान और संस्कारी बा
था, सो गुरुदेव उसे बड़े हौसले से विद्यादान देते थे।
समय का रुख पलट गया था।

इधर गजसिंह की बातें दामवती रानी की छहों म
ने सुनीं तो जल-भुनकर राख हो गईं। लेकिन यह जा
उन्हें परम प्रसन्नता हुई कि रानी दामवती की तरह महा
उसके बेटे को भी घास नहीं डालते।

अब हम इस विषय में भी सोचें कि अपने ही होन
पुत्र से राजा जामजशा क्यों द्वेष रखता था। अपने रूप
सौजन्य से सबका मन मोहने वाला गजसिंहकुमार राजा
आँखों में क्यों खटकता था? परम पतिव्रता रानी दामवती
उपेक्षा राजा आखिर क्यों करता था? इन प्रश्नों का
एक ही है और वह है, पूर्व जन्म के वैर संस्कार। वैर
के प्रत्यक्ष कारण तो बनाये जाते हैं या बन जाते हैं, पर
नहीं। जो हमें सुहाता है, उसके अपराध भी मोदमयी गा

लगती हैं और जो पूर्व-संस्कारों के कारण खटकता है, उसकी उचित बातें भी अपराध लगती हैं। यही दशा राजा जामजशा और गजसिंहकुमार की थी। राजा को अपने लूले-लँगड़े पुत्र को जी-जान-से प्यारे लगते थे और गजसिंहकुमार शत्रु-सा लगता था।

समय सर-सर-सर बीत रहा था। गजसिंहकुमार उम्र में बड़ा और विद्या में परिपक्व होता जा रहा था। रानी कामवती के लिए तो वह ऐसा अनमोल रत्न था कि वह धन्य थी। आँखों से दूर रहने के कारण राजा जमाजशा गजसिंहकुमार के विषय में अब कुछ नहीं सोचता था। □

4

माण्डवगढ़ के नर-नारियों को आकर्षित करता गजसिंहकुमार घोड़ा दौड़ाता हुआ राजपथ से नगर के ब उद्यान भ्रमण को जाता। रत्नजटित मूठ वाला खड्ग क में झूलता था। कंधे पर धनुष और पीठ पर तूणीर। उ वीरवेश निर्बलों के मन में भी उत्साह भरता था और ऐसा कि कुमारियाँ सांसें भरतीं। जिस अश्व पर कु सवारी करता था, वह वही घोड़ा था, जिसका जन्म उ फल की गुठलियों के खाने से हुआ था, जिन्हें खाकर र दामवती ने कुमार को जन्म दिया था। गजसिंहकुमार वहत्तर कलाओं में निष्णात तरुण था।

घूमते-घूमते गजसिंहकुमार एक दिन नगर से बहुत निकल गया। एक मैदान में घोड़ा रोक कर पेड़ से बाँध दि और पेड़ के नीचे बैठकर थकान मिटाने लगा। बैठा-बैठे कुमार पैर के अंगूठे से धरती कुरेदने लगा कि मिट्टी हटने कुछ चमक दिखाई दी। कुतूहल हुआ तो कुमार ने वह ही खोदना शुरू कर दिया। भाग्य ऐसे ही हाथ पकड़कर हैं। खोदने पर कुमार को अपार धन मिला। स्वर्ण-मुद्राएँ भरे कलश और ढेर सारे रत्न। कुमार ने अपने उत्तरीय सब धन बाँध लिया और अश्व पर रखकर घर ले आ संध्या की सुरमई चादर से वातावरण ढका था, इसलिए

। इस रहस्य को नहीं जान पाया।

अब कुमार ने अपनी योजनाएँ बनाईं। जहाँ धन मिला
, वहीं एक भव्य भवन बनवाया और अभेद्य दुर्ग की रचना
डाली। चारों ओर उद्यान भी लगवाया। पाँच वर्ष इसी
म में बीते। फिर रानी माँ को लेकर कुमार अपने इसी दुर्ग
न में रहने लगा। अब वह बिना राज्य का राजा बन गया।
ने सचिवादि की नियुक्ति कर ली। गजसिंहकुमार की
गद जुड़ने लगी। दूर-दूर से लोग उसकी सभा में आते थे।
र के मान्य लोग अब राजा जामजशा की सभा में न जाकर
सिंहकुमार की सभा में जाते थे। नगर के तथा नगर से
र के कवि, विद्वान और पण्डित भी अब गजसिंह की सभा
शोभित करते थे। बिना राज्य का राजा गजसिंह लोगों
समस्यायें भी बड़े आश्चर्यपूर्ण ढंग से सुलझाता था। राजा
जशा की सभा अब सूनी-सूनी और खाली-सी रहती
। राजा अपनी सभा की शून्यता के कारण से अनभिज्ञ
। तरह-तरह के अनुमान लगाता था, पर कोई कारण
की समझ में नहीं आता था।

अपनी काव्य पहेलियों, दृष्टिकूट श्लोकों तथा नाना
कारों से मण्डित काव्य छन्दों द्वारा गजसिंहकुमार का
मुग्ध करने वाला एक सिद्ध कवि एक दिन अकस्मात् ही
ा जामजशा को मिल गया। यह कवि गजसिंह की सभा
जा रहा था और राजा घोड़े पर चढ़कर नगर में घूम
था। यों अकस्मात् राजा तथा कवि की भेंट हो गई

थी। पहले यही कवि राजा जामजशा की सभा की
बढ़ाता था। आज राजा ने पूछा—

"कविवर ! तुम तो बहुत दिनों से आये ही नहीं।
रहते हो ? आज आना।"

इतना कहकर राजा आगे बढ़ गया और कवि
कारण भी नहीं बता पाया। कवि ने विचार किया कि
पुत्र की सभा में न जाकर पिता की सभा में ही जाऊं
इसके पुत्र के वैभव की कविता सुनाकर इसे चमत्कृत क
यह सोच कवि राजा जामजशा की सभा में पहुँचा और
पुराना आसन ग्रहण किया।

राजा ने जो प्रश्न मार्ग में कवि से पूछे थे, वह
सभा में भी पूछे। उत्तर में कवि ने ये काव्य पंक्तियाँ प

छोटा है आपसे पर मानवों का इन्द्र है।
लगता सभा में मानो, तारों मध्य चन्द्र है॥
बिना राज्य का राजा, अरु काम-सा अनूप है।
देखो तो लगेगा मानो, भूपों का भूप है॥
ऐसा शतदल फूल वह कि रसग्राही भौंरे।
पुरानी पुष्पवाटिका छोड़, जाते वहाँ दौड़॥

राजा ने क्रोध पूर्ण स्वर में कवि से पूछा—

"रे कल्पना-जीवी कवि ! मेरे रहते ऐसा कौन है
जो बिना राज्य का राजा बन गया और तुम सब वहीं
हो ?"

निर्भीक होकर कवि ने कहा—

"तो फिर स्पष्ट सुनें राजन् ! आपका ही पुत्र गजसिंह-
र विना राज्य का राजा है। आपके ही राज्य में एक
र उनकी परिषद् भी जुड़ती है। वह ऐसा उदार है कि
-एक श्लोक पर झोली भर-भर कर स्वर्ण देता है। आपके
ां तो मात्र वाहवाही ही मिलती है। उसकी सभा तो
क्षात् इन्द्र सभा है। बड़े-बड़े मानी उसे नमन करते हैं।

गजसिंह के प्रति राजा का सोया वैर जाग्रत हो गया।
वि से राजा बोला—

"जिसने मुझे नमन नहीं किया, लोग उसे नमन करें ?
म भी मुंहफट की तरह मेरे सामने उसकी प्रशंसा के पुल
धते हो ?····ठीक है, तब वह बालक था। पर आज तो नहीं
। अब उसे कोई नमन नहीं करेगा और मेरे खड्ग में इतनी
क्ति है कि मैं उससे नमन करा लूंगा।"

कवि ने कहा—

"राजन् ! अपने ही हाथों अपना अनिष्ट करने वाले
सार में आप ही दीखे। आप अपने काने-कुबड़े पुत्रों के लिए
मरे जाते हैं और सुपुत्र-होनहार गजसिंह को अपना शत्रु
ानते हैं। आश्चर्य ! घोर आश्चर्य ! इसी से आपका कुल आलो-
कित होगा। वह तो हीरा है। ऐसा धर्मप्राण पुरुष मैंने दूसरा नहीं
। आप इतना भी नहीं जान पाये कि आपके ही राज्य में
जा की तरह पुजनेवाला गजसिंह एक असाधारण पुरुष है।
देखना एक दिन वह दिग्-दिगन्त में अपना यश फैलायेगा।"

बीच में ही राजा ने गर्जना की—

"बस बस, बस ! अब कुछ न कहना। तुम्हारा इतना साहस, जो मेरे शत्रु की प्रशंसा मेरे सामने करो। मुझे उपदेश देने वाले कौन होते हो तुम ? उसे तो मैं बाद में देखूँगा, पहले तुम्हें ही प्रसाद देता हूँ।"

कवि को फटकारने के बाद राजा ने अपने सेवकों को आदेश दिया—

"इस शब्दप्रपंची को धक्के मार कर बाहर निकाल दो।"

राजाज्ञा पाते ही सशस्त्र सैनिक उठे। उनसे पहले कवि उठ गया और जाते-जाते कहता गया—

"मैं स्वयं ही चला जाता हूँ। पर याद रखना अहंकार हमेशा पिटता है, मिटता है।"

कवि चला गया तो राजा ने आरक्षी सैनिकों को आदेश दिया—

"सुभटो ! गजसिंह से जाकर कहो कि मेरा राज्य तुरन्त छोड़ दे। भविष्य में मैं यह सुनना नहीं चाहता कि मेरे राज्य की सीमा में कहीं भी वह रहता है। यदि वह मेरी आज्ञा का उल्लंघन करे तो पकड़कर ले आना। मैं गज के पैरों तले कुचलवाकर उसका गजसिंह नाम ही मिटा दूंगा।"

गजसिंह के शौर्य-पराक्रम की चर्चा राजा के सैनिक सुन चुके थे, अतः राजाज्ञा सुनकर भी वे मौन खड़े रहे। अब राजा और भी कुढ़ गया। क्या करे अब ? सैनिकों के बल पर ही राजा शक्तिमान बनता है। जब सैनिक ही अवज्ञा करें

थे तो गजसिंह का मानमर्दन कैसे कराये ? इन्हीं सैनिकों में एक यवन सैनिक भी सरदार था। उसके अधीन कुछ सौ यवन सैनिक थे। राजा को प्रसन्न करने के उद्देश्य से वह अपने आसन से उठा और बोला—

"पृथ्वीनाथ ! मुझे आदेश दें। मैं आपका काम करूँगा।"

"तुम ?" राजा ने कहा—"अच्छा तुम्हीं जाओ। दो में से एक काम करना है। या तो उसे मेरी राज्य सीमा से बाहर खदेड़ देना है या फिर बांधकर यहाँ ले आना है।"

साथी सैनिकों को लेकर यवन सरदार गजसिंह की सभा में पहुँच गया। गजसिंह के व्यक्तित्व का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि बेचारा भीगी बिल्ली बन गया। उसका मनोबल और साहस ऐसा गिरा कि राजा का सन्देश गजसिंह से कहने का भी साहस नहीं हुआ। परम विनीत और क्षमा प्रतिमा गजसिंह ने यवन सरदार से उसका कुशल-क्षेम पूछा और कहा—

"तुम राजा जामजशा के सैनिक सरदार हो। मेरे अतिथि हो। मैं तुम्हारे आगमन का स्वागत करता हूँ।"

यवन सरदार गद्‌गद् हो गया। मन में सोचा, 'हमारा राजा ऐसा मूर्ख है कि बिना कारण के ऐसे महापुरुष से वैर मानता है। हम इससे क्यों बिगाड़ें ? हमेशा वीर का ही साथ देना चाहिए। आखिर यही तो एक दिन माण्डवगढ़ का राजा बनेगा। इसे राजा बनने से रोक भी कौन सकता है ? यह तो

उत्तराधिकारी भी है और शक्ति-सम्पन्न भी है। मैं हा
राजा की समस्त सेना भी इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती
इसके पास ऐसे-ऐसे बाँके वीर हैं कि एक-एक सैनिक बीस-
के लिए पर्याप्त होगा।' यह सोच, यवन सैनिक सरदार
अपने आने का कारण छिपा लिया और गजसिहकुमार
प्रशंसा करने लगा। फिर बातचीत की औपचारिकता के बा
कुमार ने यवन सैनिक सरदार से पूछा—

"अब तुम अपने आने का कारण भी कह दो। आखि
किसी न किसी उद्देश्य से ही तो आये होगे ?"

कुछ झेंपते हुए सैनिक सरदार ने कहा—

"अब क्या कहूँ कुमार ! आपके पिता का सन्देश ही ऐ
है कि मुँह नहीं खुलता। कैसे कहूँ आपसे ?

कुमार बोला—

"दूत को तो निर्भीक होना चाहिए। जो भी बात
निस्संकोच बताओ। तुम्हें मुझसे डरने की जरूरत भी क्या है
तुम क्या अपनी ओर से कुछ कहोगे ? सच-सच कह डालो वीर

सैनिक सरदार ने कहा—

"आपके पिता राजा जामजशा का संदेश है कि आ
उनकी राज्य सीमा त्याग दें। नहीं तो वे आपको नष्ट क
डालेंगे।"

"बस, इतनी-सी बात" कुमार ने कहा—"अब इस
उत्तर भी सुन लो। जिस स्थान पर मैंने अपना दुर्ग बनवा
है, यह भूमि मण्डवगढ़ की राज्य सीमा में नहीं आती। कि

राजा की यह भूमि है, उससे अनुमति लेकर ही मैंने अपना दुर्गभवन बनवाया है। माण्डवगढ़ की राज्यसीमा के निकट होने के कारण तुम्हारे राजा को ऐसा भ्रम हुआ है कि मैं उनके राज्य में रह रहा हूँ।

"सरदार! अब तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे राजा किस अधिकार से मुझ पर कोई दबाव डाल सकते हैं। अब यदि वे मुझ पर आक्रमण भी करेंगे तो यह आक्रमण मात्र मुझ पर ही नहीं, उस राजा पर भी आक्रमण माना जायगा, जिसके राज्य की यह भूमि है। अतः हम दोनों आक्रामक राजा जामजशा का सामना करेंगे। फिर जिसकी हार-जीत हो, वह होगी।

"सरदार! यहीं मुझे अपार धन धरती में गड़ा मिला था। मैंने मालूम किया कि यह भूमि किस राज्य की है। पता लगाकर मैं तत्सम्बन्धी राजा के पास गया और उसका धन उसे लौटाना चाहा। तब राजा ने कहा—'मेरा नहीं है यह धन, मेरा होता तो मुझे न मिलता। बीसियों बार मैंने उसी भूमि पर पड़ाव डाला है। घोड़े बांधने के लिए खूंटे भी खुदवाये हैं, पर मुझे धरती में छिपा यह धन कभी नहीं मिला, अतः मैं तो लूंगा नहीं' तब मैंने कहा कि आप नहीं लेते तो मैं इसका उपयोग आपके राज्य की वृद्धि के लिए ही करूंगा। इस प्रस्ताव पर राजा ने कहा—तो वह भूमि भी मैं तुम्हें देता हूं। तुम वहां कुछ भी बनवालो। राजा की इच्छा स्वीकार कर मैंने पांच वर्ष में यहां अपना दुर्गभवन बनवाया है। अब राजा जामजशा क्योंकर मुझसे अपनी राज्य सीमा

त्यागने को कहते हैं ?"

यवन सैनिक सरदार ने सब बातें गौर से सुनीं और बोला—

"अब चलूंगा कुमार ! राजा जामजशा का भ्रम मैं जाकर मिटाऊंगा। मैं सब कुछ समझ चुका हूं।"

गजसिंह कुमार से विदा लेकर यवन सैनिक सरदार अपने साथियों सहित माण्डवगढ़ की ओर चल दिया। इधर गजसिंह ने सभा विसर्जित की और अपनी माता रानी दामवती को सब समाचारों से अवगत कराया। रानी ने कुमार को समझाया—

"पुत्र ! तू पिता से वैर क्यों बांधता है ? उनके सामने झुक क्यों नहीं जाता ?"

कुमार बोला—

"अम्ब ! उनकी बात मान तो ली मैंने। वे चाहते थे कि मैं उनके राज्य में न रहूँ, सो मैंने पहले ही उनका राज्य त्याग दिया। अब वे यह कहें कि मेरे राज्य के निकट भी मत रहो तो यह कैसे संभव है ? यहां की भूमि उठाकर तो मैं कहीं ले जा नहीं सकता। फिर मैं तो स्वयं ही पिता के मार्ग में पड़ना नहीं चाहता। वे ही मुझसे उलझते हैं।"

"तेरी बातों का मेरे पास जवाब ही क्या है ?" रानी दामवती बोली—"बस, इतना याद रखना कि कभी मर्यादा मत छोड़ना।"

कुमार बोला—

"माँ ! विश्वास करो । तुम्हारे दूध की गरिमा को कभी लज्जित नहीं होने दूंगा ।"

रानी पुलक उठी और कुमार को अङ्क में भरकर चूम लिया ।

× × ×

इधर यवन सैनिक सरदार ने कुमार के साथ हुई बातों का निचोड़ राजा जामजशा को सुनाया तो राजा आग-बबूला हो गया और मन्त्री फूलसिंह से बोला—

"सुनते हो मन्त्री ? कैसा अविनीत है गजसिंह ! आज से ग्यारह वर्ष पहले तुम्हीं ने बालक कहकर उसे बचा लिया था । पर आज तो बालक नहीं है ? अब क्यों न मैं उसका सिर धड़ से अलग कर दूं ?"

मंत्री ने कहा—

"राजन् ! पहले औचित्य पर विचार करें । गजसिंह कुमार दूसरे राजा की राज्यभूमि में रह रहा है । उससे आप युद्ध कैसे कह सकते हैं ? दूसरे, वह असाधारण वीर भी है । शान्त रहने में ही आपकी भलाई है ।"

इस पर राजा ने मंत्री को आड़े हाथ लेते हुए कहा—

"मंत्री ! मालूम पड़ता है, तुम भी उसकी खा चुके हो ? स्पष्ट ही तुम उसका पक्ष ले रहे हो । मुझे कुल्हाड़ी और लकड़ी के वार्तालाप की बात अब सच दीख रही है । जब कुल्हाड़ी का प्रहार लकड़ी पर हुआ तो लकड़ी कहने लगी— कुल्हाड़ी ! दोष तेरा नहीं, मेरा ही है । यदि मेरा

एक अंग तेरा साथी न बनता तो तेरी क्या हिम्मत थी, जो तू मुझे काटती ? मेरे ही वंश का एक कुंडा—बेंट तेरे साथ है, तभी तू मुझे काट रही है। सो मंत्री ! राजा का ही एक अंग तुम मंत्री, कुलांगार गजसिंह के साथ हो तो वह क्यों न अकड़ेगा ?"

मंत्री ने कहा—

"राजन् ! फिर तो यह कहावत भी आपने सुनी होगी कि किस घुटने को उघाड़ूं ? इस एक को उघाड़ूं तो भी मेरी लाज जाती है और इस दूसरे को उघाड़ूं तो भी मेरी लाज जाती है। घुटने तो दोनों एक के ही हैं। मेरे लिए आप और गजसिंह दोनों ही अपने हैं। उसे मैं शत्रु मान भी कैसे सकता हूँ ?"

"ठीक है, अब तो स्पष्ट हो गया।" क्रोध से मुट्ठियाँ भींचते हुए राजा ने कहा—"अब मैं ही अपने शत्रु से निपटूंगा। मुझे किसी के सहयोग की जरूरत नहीं।"

यह कहते हुए क्रुद्ध-क्षुब्ध राजा सिंहासन से उठ गया। सभा में एक विशेष सन्नाटा था। इधर गजसिंह कुमार धर्मा-राधन करते हुए आनन्द से अपने दिन बिता रहा था। मन-ही-मन माण्डवगढ़ की प्रजा उसे चाहती थी।

एक दिन कहीं दूर देश का एक ज्योतिषी गजसिंहकुमार की परिषद् में आया। स्वाभाविक रूप से कुमार को अपना भविष्य जानने की इच्छा हुई। उसने ज्योतिषी से कहा—

"ज्योतिर्विद ! ज्योतिष को एकदम झूठ भी नहीं कहा

जा सकता और एकदम सत्य भी नहीं। उसकी कुछ घोषणाएँ तो तीर में तुक्का की तरह सही निकल भी आती हैं और कुछ एकदम निराधार। तुम्हारा क्या विचार है ?"

ज्योतिषी ने कहा—

"महाभाग ! ज्योतिष विद्या तो सच्ची ही है। निश्चित ही वह भविष्य का नेत्र है। यदि झूठी होती तो नास्तिकों के विरोध के बावजूद भी वह आज तक जीवित न रहती। यदि इसकी कुछ बातें झूठ भी हो जाती हैं तो यह दोष ज्योतिषी का है, ज्योतिष का नहीं। अपूर्ण ज्ञानी के हाथ में पड़कर तो अच्छी से अच्छी विद्या दोषपूर्ण हो जाती है। आप ही बतायें कि यदि कोई धन्वी लक्ष्यवेध न कर सके तो यह दोष धनुर्विद्या का होगा ?"

गजसिंह मुस्कराया और बोला—

"यदि ऐसी ही बात है तो हमारा भविष्य दावे के साथ बताओ।"

ज्योतिषी ने तुरन्त प्रश्न लग्न निकाल कर गणित फैलाया। फिर गजसिंह को फलादेश सुनाते हुए बोला—

"महामात्य ! यदि दावा असत्य हो जाए तो मैं ज्योतिषी कहाना छोड़ दूँगा। अब आप अपना भविष्य सुनें। आप बारह वर्ष तक विदेश भ्रमण करेंगे और जब लौटेंगे तो चार राज्यों के राजा तथा चार राज-कन्याओं के पति बनकर लौटेंगे।"

गजसिंह बोला—

"ज्योतिर्विद ! एक बात यह बताओ कि मैं घर छोड़कर जाऊँगा ही क्यों ? मुझे तो कोई कारण ऐसा नहीं दीखता कि मैं विदेश गमन करूँ।"

ज्योतिषी बोला—

"जब जाना होता है तो स्वतः ही मन में प्रेरणा जग आती है और कारण भी ऐसे बन जाते हैं, जो पहले से हमारी कल्पना में आते ही नहीं। यह सब कैसे होगा, इसे तो भविष्य ही बतायेगा।"

"ठीक है, जो होगा सो देखा जायेगा। सब मिलाकर मेरा भविष्य तुमने अच्छा ही बताया है। देश-विदेश देखने का खूब अवसर मिलेगा।"

मुस्कराकर ज्योतिषी ने कहा—

"देखिए, अभी से आपके मन में देशाटन की इच्छा जाग्रत हो गई न ? दैव ऐसा ही चमत्कारी होता है।"

ज्योतिषी की बात पर गजसिंह हँसा और फिर थाल भर कर स्वर्ण मुद्राएँ दक्षिणा में देकर उसका सम्मान किया। जब वह जाने लगा तो भीतर भवन से प्रतिहारी ने आकर ज्योतिषी से कहा—

"आपको महारानी दामवती बुलाती हैं।"

"माँ की भी सुन आओ।" यह कह गजसिंह के प्रतिहारी के साथ ज्योतिषी को माता दामवती के पास भेज दिया। रानी ने सम्मानपूर्वक उसे चौकी पर बैठाया और बोली—

"विप्रवर ! मैं तो तुमसे कुछ भविष्य-दर्शन पू

हीं। बल्कि तुम्हें तो मेरा एक काम करना है। अगर करो तो कहूँ ?"

ज्योतिषी बोला—

"महारानीजी ! जो काम मेरी सामर्थ्य के भीतर होगा, उसे क्यों न करूँगा ? आप आज्ञा करें।"

रानी दामवती बोली—

"विप्रवर ! तुम तो देश-विदेश घूमते ही हो। बड़े-बड़े राजाओं के पास आते-जाते हो। अतः तुम मेरे लिए एक पुत्रवधू ला दो। किसी देश की राजकन्या से मेरे पुत्र का लग्न करा दो तो मैं आपकी बड़ी आभारी रहूँगी।"

"हाँ-हाँ अवश्य।" ज्योतिषी ने कहा—"बहुतेरे राजा अपनी राजकन्याओं के लिए योग्य राजकुमार के बारे में पूछते भी रहते हैं। अब मैं सीधा पुरपइठान जाऊँगा। मुझे याद आता है कि उनके कोई कन्या है।"

रानी ने पुलक कर ज्योतिषी विप्र को पर्याप्त स्वर्ण-रत्न दे डाले। यथासमय खा-पीकर ज्योतिषी ने प्रस्थान कर दिया। ज्योतिषी द्वारा बताया गया अपना भविष्य कुछ दिन तक तो कुमार के मन मस्तिष्क में रहा, फिर वह भूल ही गया। उचित भी यही है कि अपने पैर के नीचे दबे वर्तमान को देखा जाय। यदि वर्तमान ही देखा जायगा तो भविष्य स्वतः ही शुभ बन जायगा। मुनिजन अपने वर्तमान के सहारे ही तो भविष्य में मुक्ति मोक्ष पाते हैं। समय बीतता जाता है और वर्तमान भूत तथा भविष्य वर्तमान बनता जाता है। जब हम

सीधे तनकर खड़े हों तो जो हमारी पीठ पीछे है, वह भूत
पैरों के नीचे दवा वर्तमान है और आंखों के सामने—दीखने
अथवा न दीखने वाला—दोनों ही तरह का भविष्य है। वर्त-
मान सुधारने की प्रेरणा के लिए कभी-कभी मुड़कर भूत
भी देखा जाता है और भविष्य का विचार करके वर्तमान
सम्भाला जाता है। महत्त्व तीनों का ही है, पर सार्थकता
वर्तमान की ही है। भूत-भविष्य के लिए रोने वाले वर्तमान
को खो देते हैं।

5

कई नगरों और गाँवों का भ्रमण करते हुए ज्योतिषी वह पुरपइठान के उद्यान में पहुँचा। रात को उद्यान में ही सोया था। सवेरे उठकर देखा तो चम्पकमाला अपनी सखियों के साथ रथ से उतरी। यह उसी का उद्यान था। कौन थी यह चम्पकमाला? राजा गुलाबसिंह की एकमात्र पुत्री का नाम चम्पकमाला ही था। पुरपइठान के राजा गुलाबसिंह धीर-वीर और न्यायप्रिय शासक थे। उनका छोटा-सा नगर पुरपइठान पूर्ण समृद्ध और खुशहाल था। चम्पकमाला अनिन्द्य सुन्दरी बाला थी। केशर, हल्दी और चन्दन के मिश्रण से जैसा आकर्षक रंग तैयार होगा, ऐसी ही देहकान्ति राजकुमारी चम्पकमाला की थी।

हिंडोले पर चम्पकमाला बैठी थी। दो सखियाँ उसे झुला रहीं थी। इतने में दो परिचारिकाएँ कुछ फूल तोड़कर लाईं और फूल देने के बाद एक ने कहा—

"राजकुमारीजी! हमारे उद्यान में कोई पुरुष बैठा है। आप आज्ञा दें तो उसे आपके समक्ष उपस्थित करें। हमारे बाग में घुसने का वह अपराधी है।"

"तब तो जरूर कोई परदेशी होगा। वहीं चलें। देखें कौन है।"

इधर ज्योतिषी ने एक झलक चम्पकमाला की ... तो मन में सोचा, अहा ! दोनों की जोड़ी कैसी सुन्दर रहेगी। यदि गजसिंह कुमार कामदेव है तो यह साक्षात् रति है। इतने में चम्पकमाला पास आ गई और बोली—

"जानते हो, मेरे बाग में घुसने का क्या दण्ड होता है?"

विप्र ने कहा—

"राजकन्ये ! कुछ ऐसा भी है, जिसे तुम नहीं जानतीं। कहो तो बताऊँ ?"

"ऐसी क्या बात है ? हम भी सुनें" राजकुमारी ने विप्र से कहा तो उसकी एक सखी बोली—

"राजकुमारीजी ! बातों में फंसा कर यह अपने अपराध पर परदा डालना चाह रहा है। इसे पहले उद्यान प्रवेश का दण्ड ही सुना डालो।"

राजकुमारी ने सखी से कहा—

"मन्जरी ! जायगा कहाँ ? पहले इसी की सुन लें। अच्छा तो विप्र सुना डालो।"

विप्र ने सुनाया—

"माण्डवगढ़ का राजकुमार गजसिंह है तो मोलह का, पर उसके पराक्रम का वर्णन करने की शक्ति मुझमें नहीं है। रूप तो ऐसा है कि कामदेव देखें तो शरमा जाएँ। बहत्तर कलाओं का स्वामी वह नरश्रेष्ठ अनुपम युवक है।"

विप्र का मनोविज्ञान काम कर गया। राजकुमारी पर गुण-श्रवण अनुराग का नियम लागू हो गया और

वभोर-सी हो गई। मन्जरी सखी ने राज कन्या की मनोदशा खी तो विप्र से बोली—

"अब तुम्हारी यही सजा है ये सब बातें महाराज लावसिंह से जाकर कहो। अब हमारी सखी तो गई ाम से।"

ज्योतिषी उठकर चला गया और सखियां राजकुमारी छेड़-छाड़ करने लगीं। मन्जरी ने पूछा—

"सखी! बिना देखे ही यह हाल है तो देखकर क्या? ाल होगा?"

चम्पकमाला कुछ नहीं बोली। विपुला ने कहा—

"राजकुमारीजी! रात आपने वह कौनसा सपना ा था कि आपका चाहने वाला इसी बाग में आया है।"

उत्तर दिया मन्जरी ने—

"विपुला! तू भी अब रात के सपने की बात करने गी? ये दिन तो इनके दिवास्वप्न देखने के हैं। चल अब जभवन चलें। देखें यह परदेशी विप्र क्या बातें करता है।"

सब-की-सब रथ में बैठकर राजभवन पहुँची। इधर भा में पहुँचकर ज्योतिविद विप्र ने राजा गुलाबसिंह को शीर्वाद देकर अतिथि आसन ग्रहण किया। तदनन्तर राजा पूछा—

"कहो विप्र! कुछ विदेश का सुनाने लायक हो तो वश्य सुनाओ।"

विप्र बोला—

"राजन् ! ऐसा शुभ संवाद सुनाऊँगा कि आप भी प्रसन्न हो जायेंगे। मैंने राजकन्या चम्पकमाला के अनुरूप राजपुत्र देखा है।"

राजा बोले—

"विप्र ! ऐसी बहलाने वाली बातें तो मैं बहुत सुन चुका हूँ। बहुतेरे राजकुमार मैंने देखे, पर कोई भी मुझे राजकुमारी के लिए नहीं जँचा। कोई रूप में प्रतिकूल है तो किसी की उम्र कम है। कोई ठीक भी है तो व्यसनी है। फिर भी तुम सुनाओ किस राजपुत्र के बारे में कह रहे थे।"

विप्र बोला—

"राजन् ! आप यह तो सोचें कि जिस भाग्य ने राजकुमारी चम्पकमाला को जन्म दिया है, उसने उसके अनुरूप वर पहले ही पैदा कर दिया होगा। पूर्व जन्म के जोड़े अलग-अलग इस धरा पर अवतीर्ण होते हैं। समय उन्हें मिलाता है। मैं जिस राजपुत्र की बात कहने जा रहा हूँ उसका जन्म ही राज कन्या के लिए हुआ है। माण्डवगढ़ के राजा जामजशा का राजकुमार गजसिंह हर दृष्टि से अनुरूप व अद्वितीय है।"

"फिर तो वह भी कहो कि कामदेव का रूप होगा और होगा इन्द्र सा प्रतापी ?"

"इससे भी कहीं ज्यादा।" विप्र ने बड़े आत्मविश्वास के साथ कहा। इस पर राजा गुणावसिंह अट्टहास करके हँसा, हँसा इसलिए कि उसने तो व्यंग्य में कहा था और वि

उसका व्यंग्य समझा नहीं था सो कह दिया कि इससे भी ज्यादा। तव राजा गुलावसिंह ने स्पष्ट करके कहा—

"अरे विप्र! मुझे क्यों वहलाते हो? माण्डवगढ़ के राजा के यहां भी मेरे दूत हो आये हैं। उसके तो सभी पुत्र काने-भेंड़े और लंगड़े-लूले हैं। तुम धोखा देकर मेरी वेटी की तकदीर फोड़ना चाहते थे? वोलो, इस धोखे का क्या दण्ड दूं तुम्हें। विप्र हो, इसलिए प्राणदण्ड तो नहीं दूंगा, अतः अपने दण्ड का निर्णय तुम्हीं दो।"

विप्र वोला—

"राजन्! यही तो कमाल है कि कभी-कभी दोनों विरोधी वातें सत्य होती हैं। आपने जो कहा वह भी सत्य है और मैंने जो कहा वह भी पत्थर की लीक है।"

"राजन्! माण्डवगढ़ नरेश के छह पुत्र तो ऐसे ही हैं, जैसे कि आपने वताये हैं। पर उपेक्षिता पटरानी दामवती का लाड़ला गजसिंह तो कुछ और ही है। वह षोडशवर्षीय राजदुलारा वहत्तर कलाओं में पारंगत है। अपने ही वल पराक्रम और पुण्य प्रभाव से वह दूसरे राजा के राज्य में रंगभवन वनाकर अपनी माता के साथ रह रहा है। उसे आप देखेंगे तो स्वयं ही मेरे कथन से सहमत हो जायेंगे। इससे अधिक क्या दावा करूँ कि यदि मेरे कथन का शतांश भी झूठ हो तो आपका खड्ग और मेरा सिर।"

राजा पर प्रभाव पड़ा। वोला—

"फिर तो ठीक है। अव तुम हमारी अतिथि-शाला में

ठहरो। मैं महारानी जी से भी परामर्श कर लूं। चम्पकमाला तो सब की बेटी है, अतः प्रजाजनों से भी पूछ लूंगा। तदनन्तर मेरे मन्त्री आदि माण्डवगढ़ जावेंगे और पानसुपारी तथा श्रीफल लेकर वर पक्का कर आयेंगे।"

चम्पकमाला ने बाग में ही अपने भावी पति के गुण सुने थे। वह तो तभी से गजसिंह के सपने देख रही थी। उसकी मनोदशा का वर्णन उसकी मन्जरी और दूसरी सखियों ने रानी से कर दिया। अतः जब राजा गुलाबसिंह ने रानी से परामर्श किया तो रानी एकदम सहमत ही नहीं हुई, वरन जोर देकर कहा कि अब किसी से मत पूछो। अपने आदमियों को भेजकर वर पक्का करा दो। विधाता ही जोड़-तोड़ भिड़ाता है। राजा के विश्वासी दूत माण्डवगढ़ के लिए रवाना हो गए।

जैसा सुना था, उससे भी ज्यादा गजसिंह दीखा। पुरपट्ठान के राजदूत रानी दामवती से मिले और राजकुमारी चम्पकमाला का रूप वर्णन करके श्रीफल दे दिया। दोनों पक्ष वचनबद्ध हो गए। वचनों में ही बेटी बेटा पराये होते हैं। चम्पकमाला गुलाबसिंह राजा के लिए पराई हो गई। रिश्ता पक्का करके दूत पुरपट्टान वापस आगे और राजा गुलाबसिंह को सब समाचार दिये। सब बातें यथार्थ पाकर वह बहुत खुश हुआ। अपनी बेटी के भाग्य को सराहा और ज्योतिर्विद विप्र को यथेष्ट धन देकर सम्मानित किया। उस विप्र ने राजकुमारी के विवाह की तिथि भी निश्चित। अ

अब दोनों पक्ष तिथि को पकड़ने की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। राजकुमारी तो एक-एक दिन गिनती थीं।

× × ×

विवाह पक्का हो जाने के वाद गजसिंह के यहाँ नित्य नये उत्सव मनाये जाते थे। इन उत्सवों के होने और इसके पीछे जो कारण था, इसकी खवर राजा जामजशा के पास भी पहुँच गई। खवर तो हवा में उड़कर पहुँच जाती है। राजा जामजशा अपने ही पुत्र की वढ़ोत्तरी को नहीं सह पाया। अब उसने मन्त्री फूलसिंह से भी परामर्श नहीं किया और तुरन्त रेशम के कपड़े पर एक पत्र लिखवाया। फिर एक जोड़ी श्याम वस्त्रों के साथ उस पत्र को श्याम घोड़े पर ही व्यवस्थित कर दिया और रातोंरात पत्र, वस्त्र और अश्व गजसिंह के दुर्गभवन के द्वार के सामने पहुंचा दिये। घोड़ा भवन पर वँधा था। उसकी गर्दन में गोल-गोल डंडों में लिपटा पत्र वँधा था और पीठ पर वस्त्र रखे थे।

सवेरे गजसिंह ने अपने भवन द्वार पर घोड़ा वँधा देखा तो तुरन्त पत्र के डन्डे सीधे कर पत्र पढ़ने लगा। पत्र इस प्रकार था—

"गजसिंह, मेरा आदेश है कि तुम तुरन्त ही मेरा राज्य छोड़कर कहीं भी चले जाओ। तुम्हारे निष्कासन के लिए काला घोड़ा और काले कपड़ों का प्रवन्ध भी मैंने कर दिया है। अव मेरे आदेश का औचित्य भी सुनो-समझो।"

"गजसिंह! जिस भूमि पर तुम्हारा भवन वना है, वह

भूमि मेरी भी है और उस राजा की भी है, जिसने तुम्हें [illegible]
भूमि दी है। दरअसल यह भूमि अशासित भूमि है [illegible]
राज्यों के सार्थ यहाँ ठहरते हैं। मेरा पड़ाव भी यहाँ [illegible]
बार लगा है। सीमा निकटता की दृष्टि से यह माण्डल [illegible]
अधिक निकट है। अतः संयुक्त भूमि होने के कारण मेरी [illegible]
अनुमति के बिना तुम यहाँ नहीं रह सकते।"

"गजसिंह! मेरे आदेश को टालने का अर्थ युद्ध [illegible]
होगा। युद्ध का परिणाम तुम जानते ही हो। जितना [illegible]
हो, उसके साथ इतना और सुन लो कि या तो तुम्हारी [illegible]
दामवती विधवा होगी या पुत्र-हीना। दोनों तरह उसी [illegible]
हानि है।"

गजसिंह ने तीन बार पत्र पढ़ा। फिर निश्चय [illegible]
'मुझे जाना ही चाहिए। राजयुद्ध तो बहुत बड़ी समरभूमि [illegible]
लड़ा जाता है और गृहयुद्ध घर के आँगन में। पर गृहयुद्ध [illegible]
युद्ध से अधिक भयंकर होता है। फिर यह तो गृहयुद्ध के [illegible]
राजयुद्ध भी होगा। पिता की बात भी रह जायेगी। [illegible]
एक दिन कहती थीं कि पिता की बात मान क्यों नहीं [illegible]
इसके अतिरिक्त इस निष्कासन में मेरा भी हित है। [illegible]
निकले बिना भाग्य की परीक्षा नहीं होती...... ।'

यों सोचते-सोचते गजसिंह को ज्योतिषी की बात [illegible]
याद आ गई—ज्योतिषी का कथन सत्य ही है। तभी तो [illegible]
मन में प्रस्थान की प्रेरणा उठ रही है। लेकिन [illegible]
का क्या होगा? जो होगा, सो होगा। अब तो जाना ही [illegible]

इस तरह पक्का निश्चय कर गजसिंह ने घोड़े की पीठ पर बँधे काले वस्त्र उतारे और पहन लिये। घोड़े को वहीं छोड़ माता दामवती के पास प्रस्थान की अनुमति लेने पहुँचा। गजसिंह को अशुभ सूचक काले वस्त्रों में देख रानी दामवती चौंकी और घबराई तथा अचकचाकर पूछा—

"कुमार! यह क्या बाना पहन लिया तूने? उतार दे इन्हें। काले कपड़े भी कहीं पहने जाते हैं?"

कुमार बोला—

"अम्ब! तुम काला डिठौना लगाती थीं न। अब मैंने सांगोपांग डिठौना लगा लिया। देखो तो काले वस्त्रों में अच्छा नहीं लगता क्या?"

रानी बोली—

"तू समझता क्यों नहीं? अशुभ विनोद भी कहीं किया जाता है? उतार दे ये कपड़े।"

अब गजसिंह ने पिता का पत्र माता को सुनाया और कहा कि गृहयुद्ध को टालने के लिए मेरा जाना जरूरी ही नहीं अनिवार्य है। ग्रहयोग ही ऐसे हैं कि मुझे बारह वर्ष तक बाहर ही रहना है। दामवती रानी के लिए यह अनहोनी बात थी। वह रोने लगी और उसने पुत्र के दोनों हाथ पकड़ कर कहा—

"बैठ मेरे पास। कुछ भी हो जाय। मैं तुझे कहीं नहीं जाने दूंगी। यह भी तो सोच तेरी वाग्दत्ता का क्या होगा।"

"होगा क्या?" गजसिंह बोला—"जो होना होगा सो

होगा । मेरा रुकना तो असम्भव ही है । अम्ब ! आप भी
सोचें कि सिंहनी होकर कातर बन रही हैं ! सिंहनी के ब
वन में चाहे जहाँ घूमते हैं । राम की माता कौशल्या
चौदह वर्ष तक पुत्र के बिना नहीं रहीं ? फिर मैं तो
कम के लिए जा रहा हूँ ।"

रानी दामवती बोली—

"ठीक है । मैं भी तुझे अब नहीं रोकूंगी । पर मेरी
इतनी बात तो मान ले कि आज मत जा । कल सवेरे
जाना ।"

"हाँ, इसमें क्या बात है ?" गजसिंह ने कहा—
आज यहीं रहूँगा । कल ही जाऊँगा ।

"तो ये श्याम वसन तो उतार दे । मुझे बहुत बुरे ल
हैं ।" माता के कहने पर गजसिंह ने श्याम वसन उतार दि
धीरे-धीरे दिन ढला । धर्मनिष्ठ माता के धर्मनिष्ठ पु
दिन डूबने से पहले भोजन किया । माता ने बड़ी
परोसा । खा-पीकर गजसिंह घूमने चला गया । रात्रि हुई
सो गया । पर चिन्तामग्न रानी दामवती को नींद नहीं

वह सोचने लगी—"रातभर के लिए तो कुमार
से रुक गया । यदि और भी दो-चार दिन के लिए
तो भांवरें डलवा दूं । पर अब कैसे रोकूं । हाँ, यह
शूलपाणि की बात नहीं टालता । वह यदि यहाँ होता
अवश्य रोक कर पहले ब्याह तो करा देता । मेरे भाई
पाणि का नगर अहदपुर यहाँ से साठ योजन दूर है ।

त कैसे आये । प्रयत्न तो करूँगी ही ।"

यह निश्चय कर रानी दामवती चुपके-से उठीं और त मार्ग से रड़िया-रेवारी के घर पहुँच गईं । रड़िया वक्त : काम आने वाला एक सामन्त था—स्वामिभक्त सामन्त । नी ने रेवारी की पत्नी से कहा तो उसने बहाना बना दिया ये तो ससुराल गये हैं । रानी ने उसकी बात पर विश्वास ीं किया और दनदनाती हुई भीतर चली गईं । देखा तो ड़िया सो रहा है । जगाया उसे । रड़िया हड़बड़ा कर उठा र रानी दामवती को सामने देखकर बोला—

"आप कुशल से तो हैं ? इतनी रात गये आप क्यों ईं ? किसी भी सेवक को भेजकर बुलवा लेतीं ।"

रानी बोली—

"वीर रड़िया ! अधिक बातें करने का समय नहीं है । ा काम है । यदि कर सको तो उठ बैठो । मेरे भाई का ार अहटपुर यहाँ से साठ योजन दूर है । बोलो रातों-रात ो यहाँ ले आओगे ? यदि भैया शूलपाणि आज रात को ही आ सके तो अनर्थ हो जायगा ।"

रड़िया उठा । पैरों में पदत्राण डालते हुए बोला—

"यह तो कुछ भी मुश्किल नहीं । मेरे पास गंगा-यमुना ाम की दो ऐसी सांड़नी (ऊँटनी) हैं कि हवा से बातें करते हुए ाती हैं । वे रातभर में दस चक्कर यहाँ से अहटपुर तक के र सकती हैं । अब आप इतना बता दें कि आपके भाई अथवा ...सिंह कुमार के मामा शूलपाणि से कहना क्या है ?"

खड़े-खड़े ही रानी दामवती ने रड़िया को सा [illegible] समझा दी। हाथ में ज्योतिपुंज दण्ड (मशाल) लेकर [illegible] रड़िया। दोनों साँडनी लीं। एक पर स्वयं बैठा और [illegible] यमुना को पीछे डाल लिया। करीब चालीस योजन [illegible] के बाद उसे एक स्त्री मिली। उसके वस्त्र काले थे। [illegible] अस्पष्ट थी। रड़िया ने उसे टोका—कौन हो तुम? [illegible] कहा—रजनी। मैं रात्रि की देवी रजनी हूँ। मैं [illegible] तभी सवेरा होता है। रड़िया बोला—

"तब तो आज तुम्हें मैं जाने नहीं दूँगा। [illegible] तुम्हारी ही जरूरत है।"

रात की देवी बोली—

"अनिश्चित काल के लिए मैं कैसे ठहर सकती हूँ? [illegible] मेरे चले जाने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे, उनका क्या [illegible] चकवा-चकवी तो मेरे आते ही अलग हो जाते हैं।"

मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं तुमसे [illegible] करूँ। रड़िया ने कहा—'अब यदि तुम [illegible] तुम्हें अपना काम होने तक बाँध कर रखूँगा।' [illegible] रड़िया ने रजनी देवी को पकड़ लिया और साँडनी [illegible] बाँध दिया। रात में ही शूलपाणि के भवन पर पहुँच [illegible] पर प्रहरियों ने उसे शूलपाणि से नहीं मिलने दिया। [illegible] पल की देर उसे अखर रही थी। अतः साँडनी [illegible] के पीछे पहुँचा। रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ गया और [illegible] को सब वृत्तान्त सुनाकर अपने साथ ले लिया। [illegible]

नों माण्डवगढ़ के निकट बने गजसिंह के दुर्गभवन में आ
ये। वहन-भाई आपस में मिले। समस्या पर विचार-विमर्श
या। शूलपाणि ने सुझाव दिया—

"बहिन! अनिच्छापूर्वक कुमार को रोकना ठीक नहीं
। मैंने सब बातें सुन—समझ ली हैं। इन परिस्थितियों में
मार का विदेशगमन उचित ही है। इन वारह वर्षों में जाने
ह क्या से क्या हो जाए।"

रानी बोली—

"भैया शूलपाणि! तुम्हारी वात मैं मानती हूँ। पर
हें यहाँ बुलाने का एक प्रयोजन यह भी है कि पुरपइठान के
जा गुलावसिंह की कन्या चम्पकमाला से कुमार का विवाह
रके उसे विदेश भेजना चाहिए। विवाह के वाद दो भाग्य
क हो जाते हैं। इस प्रकार कुमार विदेश जायगा तो चम्पक-
ला का भाग्य भी उसके साथ रहेगा।"

शूलपाणि बोला—

"लेकिन यों अचानक रातोंरात राजा गुलावसिंह विवाह
ने को तैयार कैसे हो जायगा?"

रानी बोली—

"नहीं होगा तो न हो, पर फिर हमारा दोष तो न
गा। यह भी तो अनुचित है कि कुमार के वारह वर्ष तक
हर रहने की सूचना न देकर हम राजा गुलावसिंह को
धेरे में रखें।"

"ठीक है तो हम अभी पुरपइठान जाते हैं।" शूलपाणि

ने कहा—"रातों रात ही लौट आयेंगे।"

रड़िया, शूलपाणि और गजसिंह कुमार तीनों ने गं
यमुना साँड़नियों पर पुरपइठान के लिए प्रस्थान कर दि
रात की देवी सांडनी की पूंछ से बँधी छटपटा रही थी।
तो रात न बीते, यह भी अपने हाथ में था। यथासमय
सब पुरपइठान पहुँच गए। राजा गुलाबसिंह को जगाया
उसे सब बातें बताईं। सब कुछ सुनने के बाद राजा ने कहा

"आप लोग कुछ अनहोनी-सी करने आये हैं। राजा
बेटी का विवाह क्या यों गुपचुप होता है? इस तरह से
नगरवासियों को भी पता नहीं चलेगा।"

शूलपाणि बोला—

"अब आप ही सोचें। सब स्थिति-परिस्थिति
सामने है।"

राजा बोला—

"अन्तिम निर्णय चम्पकमाला का ही होगा। मैं उसने
कर अभी बताता हूँ।"

राजा ने चम्पकमाला से पूछा तो उस आर्यललना
लज्जा त्याग कर स्पष्ट बताया—

"पिताजी! विवाह तो उसी दिन हो गया, जिस दि
आपने श्रीफल देकर वाग्दान किया था, अब तो भाँवरें पड़ने
बाह्य रीति शेष है। आर्यकन्या जीवन में एक ही बार वि
करती है। विवाह मन से होता है, सो हो चुका। रही
उनके विदेशगमन की, सो यह सब तो मेरा भाग्य है।"

बस, अब क्या देर थी ? रातोंरात विवाह हो गया। ...पकमाला को वहीं छोड़कर गजसिंह कुमार रातोंरात ही ...ने दुर्गभवन में आ गया। रड़िया ने रात की देवी को मुक्त ...र दिया। सवेरा हो गया। श्याम वस्त्र पहने कुमार गजसिंह ...ाम अश्व पर ही सवार होकर भाग्य-परीक्षा करने चल ...या। रानी दामवती बहुत रोई। शूलपाणि भी दुःखी हुआ। ...ी ने रड़िया को बहुत धन दिया, उसके साहसिक कार्य के ...ए।

प्रस्थान से पूर्व माता दामवती ने जो शिक्षाएँ दी थीं, वे ...ार गजसिंह ने हृदय में धारण कर लीं। माता ने कहा था ... परधन और परदारा से सदा बचना। जैनधर्म पर जो ...ी आस्था है, उससे कभी मत डिगना। दुखियों का दुःख ...ा दूर करना और बारह वर्ष पूरे करके जल्दी लौटना। मैं ...नकर बारह वर्ष काटूंगी। 

6

कहाँ जाना है ? किधर जाना है, इसका कोई निश्चय नहीं था। गजसिंह के मन में तो यही एक बात थी कि जाना है। अब तो हर वन, हर पहाड़ और सर-सरिताएं उसके ठहरने के स्थान थे और हर नगर, हर गांव उसके अपने थे। प्रवासी के लिए दूसरे के घर भी अपने ही हो जाते हैं। अकेला था गजसिंह। धर्म, धैर्य, साहस और भलमनसाहत उसके अदृश्य साथी थे। अकेली भलमनसाहत ही एक ऐसी साथिन है जो जहाँ जाती है, सफलता दिलाती है। गजसिंह निर्बलों का बल और दुखियों का सहारा था। अनजाने में बिना सोचे और अनायास ही वह पुरपइठानपुर पहुंच गया। विवाह के समय रात में ही उसने यह नगर देखा था, सो दिन में उसकी वीथियाँ और राजपथों को देखकर वह नहीं जान पाया कि मैं अपनी ससुराल पुरपइठानपुर आ गया हूँ।

सूर्यास्त में देर थी। गजसिंहकुमार ने सोचा—यह नगर तो अच्छा है। हमारे माण्डवगढ़ से है तो छोटा, पर बड़ा साफ-सुथरा है। आज की रात तो यहीं ठहरूँगा। क्या नाम है, इस नगर का ? कोई आता-जाता हो तो पूछूं। होगा कोई नाम। आज तो यहीं बाग में ठहरूँगा। अब

वृक्ष मूल में ही तो ठहरता आया हूँ। आज भी यहीं सही। यदि कुछ बात बन गई तो यहीं के राजा के यहाँ नौकरी कर लूंगा। बारह वर्ष यहीं, इसी एक नगर में कट जायेंगे। सवेरे राजा से भी मिलूंगा।

ऐसा निश्चय कर गजसिंह ने पेड़ से घोड़ा बाँध दिया। राजकुमारी चम्पकमाला रथ में बैठकर कहीं जा रही थी, रथ में से झांक कर उसने देखा तो अपने पति को पहली झलक में ही पहचान लिया। मन्जरी को रथ से नीचे उतार कर बोली—

"मन्जरी ! तूने पहचाना ? अरी ये तेरे जीजा हैं। मैं चलकर अपना भवन सजाती हूँ और तू इन्हें लेकर आ। इनका घोड़ा अश्वशाला में बँधवा देना।"

मन्जरी ने पूछा—

"सखी ! क्या कहकर लाऊँ ? क्या कह दूं कि तुम्हारी 'वे' बुलाती हैं।"

"मुझसे क्या पूछती है ?" तनिक सकुचाकर चम्पकमाला ने मन्जरी से कहा—"जैसे भी आयें, ले आ। चतुर तो तू बहुत है।"

उछलती-कूदती मन्जरी गजसिंह के पास पहुँच गई और बोली—

"चलो मेरे साथ। मेरी सखी तुम्हें बुलाती हैं।"

कुमार ने आश्चर्य से देखा, मन्जरी को। फिर पूछा—

"जान न पहचान और तुम्हारी सखी बुलाती है ?

क्यों बुलाती हैं वे ?"

नटखट मन्जरी ने छेड़ते हुए कहा—

"आप पर तरस खाकर बुलाती हैं। यहां घुले में ए
काटते वे आपको देख नहीं सकतीं। आज की रात उन्हीं
भवन में 'सुख से' काटना।"

'सुख से' वाक्यांश मन्जरी ने विशेष जोर देकर कहा—
कुमार मौन रहा। क्या कहूँ, यही वह सोच रहा था।
में मन्जरी ने फिर कहा—

"पुरुष होकर आप डरते हैं! मेरी सखी क्या तु
बुलाती हैं? उनका साहस देखो और अपना देखो। आ
घोड़ा मैं अश्वशाला में सुरक्षित बंधवा दूंगी।"

कुमार ने सोचा—'चलकर देखूं तो सही, क्या रहस्य है
कुछ 'गड़बड़' होगी तो लौट आऊँगा। बड़ी विचित्र स्त्री
जो यों निर्भय होकर बुलाती है।'

मन्जरी के साथ चल दिया कुमार। गुप्तमार्ग से
पाँचवी मंजिल पर कुमार को ले गई। उसने रानी
चम्पकमाला को देखा तो दंग रह गया। अपनी प्रिया को
पहचाना उसने। उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर ही दंग
था। एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े थे दोनों। दोनों में
कोई नहीं बोला। कुछ क्षण बाद कुमार ही बोला—

"राजभवन में तुम्हें देखकर मैं समझ गया हूँ कि
राजकन्या हो और यह भी लगता है कि तुम सधवा स्त्री
भी हो। क्यों बुलाया है मुझे? परदारा से बचने का

..."

अब पलकें झुकाये चम्पकमाला बोली—

"परदारा त्यागी हैं आप इसीलिए तो अपने स्वामी को
ाया है। स्वामी ! मेरे साथ सात फेरे लगाकर ही आगे न
ने के लिये रुक गए। मैं भांवर की ही बात नहीं मानूंगी।
जो जीवनभर संग-साथ चलना-रहना है।"

"तो तुम.... ?"

इतना ही कह पाया कुमार कि चम्पकमाला पुनः
ली—

"स्वामी ! राजा गुलाबसिंह की कन्या चम्पकमाला पर-
रा नहीं है। मेरा सौभाग्य है कि आप आ गए और दुर्भाग्य
है कि आपने मुझे पहचाना ही नहीं।"

बोला कुमार—

"कैसे पहचानता ? उस रात तुम अवगुण्ठन में थीं और
, रात की छाया। दीपालोक में मैं तुम्हें देख भी तो नहीं
या।"

इतने में पीछे से आकर मन्जरी बोली—

"मैंने दीपक में आज इतना तेल डाल दिया है कि तुम
ों के संग-संग जागता रहेगा। अब 'मतलब की बातें'
रो। मैं तो चली।"

कुमार ने मुड़कर मन्जरी को देखा। तनिक मुस्करा कर
ाग गई मन्जरी। चम्पकमाला ने आगे बढ़कर
रण छुए। गजसिंह ने उसे वक्ष से लगा

दोनों शय्या पर बैठे। रात आ चुकी थी। दोनों रात्रि-भोजन
त्यागी थे इसलिए दोनों ने दूध ही पिया। फिर बातें हुई
बातों में रात कटी। सवेरे उठकर कुमार ने प्रस्थान की अनु-
मती माँगी तो चम्पकमाला बोली—

"आप तो ज्योतिष को मानते हैं और ग्रहयोग के प्रभाव
में भी विश्वास करते हैं। तब क्या आज प्रतिकूल तिथि में
प्रस्थान करेंगे ?

कुमार बोला—

"मेरा प्रस्थान तो माण्डवगढ़ के निकट अपने दुर्गम
से माना जायेगा। यह तो बीच का पड़ाव है। पड़ाव से
प्रस्थान तिथि कौन देखता है ? लोग रात को पड़ाव पर रुकते
हैं और सवेरे चल देते हैं।"

"लेकिन पत्नी से अनुमति लेना बिल्कुल अलग बात है।
मेरी अनुमति के बिना आप जाना चाहें तो जाएँ पर मैं
आज जाने की अनुमति नहीं दूँगी।"

हँसकर बोला कुमार—

"ऐसे ही माँ ने एक दिन रोक लिया था। एक रात
कहने से रुका तो तुम मिल गई। उसी रात तो ब्याह हुआ
था हमारा। आज की रात यदि तुम्हारे कहने से रुकूँगा तो
जाने क्या मिल जाए। इसलिए तुम्हें नाराज करके नहीं
जाऊँगा।"

चम्पकमाला बोली—

"मिलेगा क्यों नहीं ? कुछ ऐसा मिलेगा कि वह हमें

नों का प्रीति-फल ही होगा।"

चम्पकमाला का संकेत समझते हुए कुमार ने पुनः उसे वक्ष से लगाया और बोला—

"रात की बातें दिन में नहीं करते। मेरे यहाँ रहने से ग माँ बन जाओ तो इससे अच्छी बात क्या होगी।"

प्रातः उठकर माला जप आदि किया। स्नान आदि से निवृत्त हो वह अपने काम में लग गया। फिर तो उसे चार दिन और रुकना पड़ा। किसी-न किसी बहाने से राजकुमारी को रोक लेती थी। लेकिन पाँचवें दिन की प्रभात नहीं रुका जसिंहकुमार। जब राजकुमारी अपने पति को रोकने में विफल हुई तो बोली—

"मैं आपको रोक नहीं सकती, पर आपके साथ तो अवश्य जा सकती हूँ। आधा अंग यहाँ छोड़ कर आप जा भी कैसे सकते हैं ?"

कुमार ने अपनी असमर्थता प्रकट की तो राजकुमारी ने कहा—

"स्वामी ! यदि मैं गर्भवती हो गई तो मेरी कैसी दुर्गति होगी, यह भी तो आप सोचें। मेरी ससुराल वाले कदापि मेरा विश्वास नहीं करेंगे। अंजना की सास ने भी तो नहीं किया था।"

कुमार ने समझाया—

"प्रिये ! सती-सन्नारियों को झूठे लोकापवादों से नहीं डरना चाहिए।"

फिर राजकुमारी ने हठ नहीं किया। कुमार अकेला ही चल दिया। कई दिन तक चलने के बाद वह पुरपइठान से बहुत दूर निकल गया। एक वन में रुका तो वहाँ बड़े चमत्कारी ढंग से चम्पकमाला प्रकट हो गई। कुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ। बोला—

"तुम ही हो या कोई देवी अपनी माया से चम्पकमाला बन गई है? तुम यहाँ एकाएक कैसे प्रकट हो गई?"

चम्पकमाला ने बताया—

"अब आपको ज्यादा चक्कर में नहीं डालूंगी। आप मुझे साथ नहीं लाये, पर मैं आ गई। स्वामी! अपनी लब्धि व सिद्धि के बल से मैं सूक्ष्म अदृश्य होकर आपके पदत्राण पर चिपक कर यहाँ तक चली आई।"

गंभीर होकर कुमार ने कहा—

"प्रिये! त्रियाहठ कभी-कभी बड़ा भयंकर परिणाम दिखाता है। यदि मैं संयोग से पुरपइठान न आता तो तुम क्या करतीं? मेरी विवशता है। तुम्हें मैं साथ नहीं ले जा सकता। लौट जाओ। अपनी विद्या से ही अपने पीहर में पहुँच जाओ।"

चम्पकमाला ने अपना निश्चय सुनाया—

"अब कुछ भी हो। स्वामी, मैं पीहर तो हरगिज नहीं जाऊँगी। लोग क्या सोचेंगे। आप भी साथ मत ले जाइए। मैं आपके लौटने तक यहीं वन में रह कर तप करूँगी। आप कुछ न कहना।"

यह कह चम्पकमाला वहीं वट वृक्ष के नीचे ध्यान लगा कर बैठ गई। कुमार ने आगे प्रस्थान कर दिया।

× × ×

पोतनपुर नामक नगर में रूपसेन नाम का राजा राज्य करता था। इसी नगर के निकट गजसिंहकुमार पहुँच गया। रात हो गई थी। नगर तीन कोस दूर था। अतः नगर के बाहर ही कुमार एक उजड़े बाग में ठहर गया। यह बाग बहुत पुराना था। सूख गया था यह बाग। घास तक सूखी थी। अब यहाँ कोई नागरिक भ्रमण करने नहीं आता था। पुराने पेड़ों के कोटरों में गिद्ध, उल्लू आदि पक्षी रहते थे। चिमगादड़ें भी बहुत थीं। इनके मल से उद्यान की धरती सफेद छींटों से रंगी पड़ी थी। आस-पास के कुछ लोग सूखी लकड़ी बीनने दिन में यहाँ अवश्य आते थे, वैसे कोई भूल कर भी नहीं आता था। इसी उद्यान में एक सूखी इमली के नीचे कुमार ने अपना उत्तरीय बिछाया और लेट गया। घोड़ा भी पास ही बाँध दिया था। रात को गिद्ध पंख फड़फड़ाते थे। उल्लू-कौओं की लड़ाई भी होती थी। उल्लू को दिन में नहीं दीखता और कौआ रात में अंधा हो जाता है। सो उल्लू सोते कौओं पर आक्रमण करते तो काँव-काँव के चीत्कारों को सुनकर कुमार बार-बार बीच-बीच में जाग उठता था। उठकर बैठा हो गया कुमार और मन-ही-मन बड़बड़ाया—'यह कैसी विचित्र बात है कि शान्ति के गेह उद्यान में और नीरवता सहोदरा रात्रि में भी अशांति है। आज तो जाग कर ही रात काटनी पड़ेगी।'

यों सोच-विचार करके कुमार पुनः सो गया। चमत्का
यह हुआ कि कुमार के पुण्य-प्रभाव से सूखा-उजड़ा उद्या
रात-भर में ही हरा-भरा हो गया। पुण्यों का प्रभाव ऐसा ह
होता है कि जब राम को वनवास हुआ था तो सूखा-उजड़
दण्डक वन भी हरा-भरा हो गया था। राम, सीता औ
लक्ष्मण के रहने से दण्डकवन की शोभा ऐसी अनुपम हो ग
थी कि वन में रहना सबको सुहाने लग गया था। बाद में व
वन जब पुनः सूना हो गया तो भूला-भटका एक कवि हृ
पथिक वहां पहुँच गया और वन की भयानकता देखकर उस
मुख से ये शब्द अपने आप निकल पड़े—

"साँय-साँय करता है जंगल।
राम के बाद किसी को वनवास न हुआ?"

यह कवि यदि आज पोतनपुर नगर के इस उजड़े-
उद्यान में होता तो कहता—

"कभी उल्लू बोलते थे यहां
आज कौन सच मानेगा इसे?"
जाने किस पुण्यशाली को वनवास मिला आज?
आज की कुछ बात ही और है।
लताएँ विटपों से ऐसे लिपटी हैं,
जैसे प्रिया प्रियतम से।"

सवेरे लकड़हारे लकड़ी बीनने आए। उद्यान को दे
तो आंखें मलने लगे—'कहीं हम भूलकर राजोद्यान में तो

गए। कैसी हरियाली है। अब तो स्वार्थी भौंरे भी जाने
ो आ गए?' फिर सबने पेड़ के नीचे लेटे गजसिंहकुमार
देखा। आपस में बोले—

"अरे देखो रे! यह कोई देव यहाँ रुका है। वन देवता
दर्शन हो गए हमें। चलो मालिन से कहें।"

दौड़े-दौड़े सब मालिन के पास गये और एक ही साँस
अनहोना शुभ संवाद सुना दिया। मालिन को विश्वास
ीं हुआ तो एक बोला—

"यहाँ बैठे-बैठे विश्वास होगा भी नहीं, चलकर अपनी
ाँखों से देखलो।"

मालिन बाग में आई और गजसिंह के समक्ष हाथ जोड़
र खड़ी हो गयी। बोली वह—

"वन देवता! आप रूठे थे, सो यह बाग उजड़ा था।
ाज आप स्वयं ही प्रकट हो गये और इस बाग की काया
लट दी। मेरा तो उद्धार हो गया। क्या सेवा करूँ
ापकी?"

कुमार बोला—

"माता! मैं कोई देवता-वेवता नहीं हूँ। तुम्हारी
ी तरह मनुष्य हूँ। देश-देशान्तरों का भ्रमण करने निकला
ा, सो यहाँ ठहर गया। यहाँ कोई उद्यानरक्षक नहीं दीखा,
सलिए विना अनुमति के ठहर गया। अब तुम इसकी
ालकिन मिल गई हो तो ठहराई (मूल्य) देता हूँ। इसे
्वीकार करो।"

यह कह गजसिंह ने पांच सुवर्ण मुद्रा मालिन के हाथ पर रख दी। मालिन की आंखों में चमक आ गई। बोली—

"तब तो किसी नगरसेठ के पुत्र हो या किसी देश के राजा।"

"यह भी नहीं।" कुमार ने कहा—"तुम्हारे सब अनुमान गलत हैं। खैर छोड़ो ये बातें। इस नगर का परिचय दो। मैं कुछ दिन इसी नगर में ठहरना चाहता हूँ।"

मालिन बोली—

"ये सब बातें घर पर ही होंगी। आज मेरी कुटिया पर चलें और कुछ दिन सेवा का अवसर दें। आपने इतनी अधिक ठहराई दे दी है कि महीनों आप मेरे घर पर ठहरें तो भी पूरी न हो।"

मालिन के चातुर्य पर कुमार मुस्कराया। उसे ठहरना था ही, सो मालिन के साथ चल दिया और अब उसी के घर रहने लगा। जब कुछ दिन बीत गये तो कुमार ने सोचा कि अब तो यहाँ के राजा रूपसेन से परिचय करना चाहिए। कब तक लुका-छिपा कब तक रहूँगा? यह सोच गजसिंह कुमार एक दिन पोतनपुर के राजा रूपसेन की सभा में पहुँच गया। कुमार के रूप और व्यक्तित्व से राजा रूपसेन इतना प्रभावित हुआ कि बाँह पकड़कर अपने सिंहासन के निकट ही बैठाया। उससे ऐसे बात की, मानो, पहले से ही जान-पहचान हो। सिंहासन के पास बैठने का निषेध करते हुए गजसिंह ने आना-कानी करते हुए कहा था कि इन काले कपड़ों में आपके पास बैठते हुए मुझे

छा करूँगा। राजा ने उसकी इस बात पर टिप्पणी की कि ड़े काले हैं, तभी तो तुम्हारा मुख काले बादलों में से कता चन्द्र-जैसा है। फिर तो और भी बातें हुईं। फिलहाल ार ने अपना परिचय छिपा लिया। राजा ने भी ज्यादा ीं कुरेदा। पर उससे आग्रह किया कि अब तुम मेरे यहां रहोगे। विनोद में कुमार ने पूछा—

"वेतन क्या मिलेगा?"

"अरे तो तुम नौकरी करोगे? कैसी बातें करते हो ार?" राजा ने बड़े अपनेपन से यह बात कही। कुमार भी अपनापन जताया और बोला—

"नौकर बनकर तो मैं भी रहना नहीं चाहता। पर यह नहीं चाहता कि यों ही निठल्ला आपके दरबार में बैठा हूँ। मेरी प्रार्थना यह है कि मैं अपनी इच्छा से राजहित र प्रजाहित के काम करूँ और बदले में बस गुजारा। मैं सी का शासन स्वीकार नहीं कर सकता। अपने पिता तक नहीं किया। क्या करूँ? स्वभाव ही ऐसा है।"

राजा रूपसेन बोला—

"मुझे स्वीकार है। कहीं रहो, कहीं घूमो और जो चाहो करो—न करो। पर इसके साथ मेरी प्रार्थना यह है कि सदा मेरे साथ रहोगे।"

"आपकी प्रार्थना को आदेश मान कर मैं सदा आपके थ रहूँगा। यों कहो कि रात-दिन के लिए आपका अंग-गा।"

यही हुआ । गजसिंहकुमार राजा रूपसेन का सेनापति बनकर रहने लगा । अब उसके रहन-सहन के ठाट-बाट भी बदल गए थे । भ्रमण के समय जब वह अश्वारूढ़ होकर राजा के साथ जाता तो पोतनपुर के नर-नारी उसे प्यासी निगाहों से देखते । इसी क्रम में एक दिन वह राजा के साथ वनभ्रमण को जा रहा था । अभी दोनों राजपथ के चौराहे पर ही थे कि एक दिशा से आँधी का-सा बवण्डर उठते देखा । दोनों ठिठक गए । बवण्डर निकट आया और उसमें से एक विशालकाय असुर प्रकट हुआ । असुर को देखकर तो राजा की घिग्घी-सी बंध गई । सवेरे के समय पोतनपुर के जो नर-नारी आ-जा रहे थे वे भी भयभीत होकर इधर-उधर लुक-छिप गए । राक्षस ने अपनी बात बड़ी जोर से कही—

"हे राजा ! मेरे नियमित भोजन का प्रबन्ध कर । दो आदमी प्रतिदिन तू मुझे अपने नगर से दे । यदि नहीं देगा तो तेरे नगर का सफाया कर दूंगा ।"

भयातुर राजा ने स्वीकृति दी—

"जैसी आपकी इच्छा । आज मैं व्यवस्था कर दूंगा । कल से दो आदमी, जहाँ आप कहेंगे—आ जाया करेंगे ।

यह सुनते ही असुर मुंह फाड़कर हँसा । गजसिंह से न रहा गया । बोला गजसिंह—

"हे अधम राक्षस ! तू बिना मौत मरने यहाँ क्यों चला आया ? चुपचाप चला जा और पेड़-पत्तों को खाकर काम चला ।"

क्रोध की साक्षात् प्रतिमा राक्षस यह बात कैसे सुन पाता ? बोला---

"यह बकरी का बच्चा भी बोलने लगा ? आ आज पहले तुझे ही खा डालूं। देखे कैसे खिला-खिलाकर तेरा नाश करूंगा। आकाश से नीचे आऊंगा और चोटी पकड़कर उठा ले जाऊंगा।"

यह कह राक्षस आकाश में उड़ गया। राजा ने भयभीत होकर गजसिंह से कहा—

"यह क्या नया संकट मोल ले लिया तुमने ? वह देखो, ऊपर से मुंह फाड़कर आ रहा है।"

गजसिंह ने राजा रूपसेन को कोई उत्तर नहीं दिया और धनुष पर बाण चढ़ा दिया। उस अद्भुत धन्वी ने बाणों की शृंखला ऐसी छोड़ी कि राक्षस के फटे मुंह में डाट-सी लगा दी। राक्षस बड़ा क्रुद्ध हुआ। धड़ाम से धरती पर खड़ा हुआ कि कुमार ने उसकी दोनों भुजाएं काट डाली। पोतनपुर की छतों पर ऐसी भीड़ हो गई कि छत-छज्जे टूटे पड़ते थे। समस्त नर-नारी इस नर-असुर युद्ध को देखने लगे। सबके हृदय धड़क रहे थे। लेकिन सबको आशा बंध गई कि गजसिंह साधारण व्यक्ति नहीं है, यह इस मायावी असुर को अवश्य मारेगा।

इधर असुर ने अपनी माया फैलाई तो वहां बहुतेरे असुर हो गए। देवता तक भी इस महा संग्राम को देखने आ गये। पर वाह रे वीर गजसिंह ! उसने सब को ललकारते हुए कहा—

"पापियो। मेरे पिता ने भी असुर से नाक रगड़वाई है। पापपुंज जितना भारी होगा, वह पुण्य से उतना ही जल्दी नष्ट होगा। ढेर सारे अंधकार को एक किरण मिटा देती है। आओ! सब आओ।"

गजसिंह के पुण्यों का ऐसा प्रभाव था कि इन्द्राणी देवी ने सब असुरों की माया को उलटा घुमा दिया। वे सब प्राण बचाकर भाग गए। वही असुर बचा सो उसे कुमार ने जाने नहीं छकाया। तानकर एक ऐसा वाण वक्ष में मारा कि पापी असुर ढेर हो गया। फिर तो नगर में हू हू मच गई। सब हू हू हू, अरे रे रे करते फिरते थे। राजा रूपसेन ने छाती से लगा लिया कुमार को और बोले—

"भला, सुनने वाला कौन मानेगा कि तुमने पहाड़ जैसे असुर को मारा होगा? पर हम सब तो देख रहे हैं कुमार। तुम्हारे बराबर तोलकर सोना दान करवाऊँगा।"

कुमार बोला—

"जग की यह रीति भी कैसी उल्टी है कि संकट आने पर दान-पुण्य किया जाता है। पहले से ही यह सब होता रहे तो ऐसे असुर अपने आप बनकर निकल जाएँ।"

फिर तो घर-घर चर्चा हुई। असुर के शव को आदमियों ने मिलकर घसीटा। महीनों नर-असुर युद्ध की चर्चा रही। गजसिंह कुमार तो अब पोतनपुर में ऐसा छा गया कि बच्चा-बच्चा उसको जान गया। अब उसके लिए अलग महल और अलग दास-दासी थे।

अब चोर-उचक्के और दस्यु गजसिंह के नाम से ही
ने लगे। अब रात में चोरियां नहीं होती थीं। पोतनपुर के
ग घर खुले छोड़कर रात को निश्चिन्त सोते थे। गजसिंह
बल-पराक्रम की चर्चा दूर-दूर के नगर देशों में भी पहुँच
ती थी। बहुत-सी कुमारियां अब यह चाहने लगी थीं कि
ारा व्याह हो तो गजसिंह के साथ ही हो। लेकिन चाहने
त्र से किसकी इच्छा पूरी होती है? जिसकी इच्छा प्रबल
और जिसका स्नेह सच्चा हो उसे तो मिलने वाला मिल ही
ता है। अब दूर-दूर के लोग यह भी जान गए थे कि गज-
ह कुमार माण्डवगढ़ के राजा जामजशा का सातवां पुत्र है।



7

मालवदेश की राजधानी धारापुरी नगरी में सुरेन्द्र नाम
राजा राज्य करता था। उसके एक पुत्री थी। नाम था फूलदे।
फूलदे सुन्दर ही नहीं थी, बल्कि विद्या-बुद्धि में वह साक्षात्
सरस्वती थी। उसने चौंसठ विद्याएँ पढ़ ली थीं। धर्मशास्त्र
का अध्ययन गहरे पैठ कर किया था। किसी दिन दूर देश से आये
एक कवि ने राजा सुरेन्द्र के सामने गजसिंह कुमार के रूप
और शौर्य-पराक्रम की चर्चा काव्य-पाठ के रूप में कर डाली।
संयोग से उस दिन फूलदे भी सभा में थी। अनदेखे गजसिंह
पर वह मन-ही-मन अनुरक्त हो गई और प्रतिज्ञा कर डाली—
'जो भी हो, मैं गजसिंह कुमार की ही चरणदासी बनूँगी।'
यों राजा सुरेन्द्र भी चाहता था कि गजसिंह कुमार उसका
जामाता बने। पर जब उन्हें अपनी पुत्री के अभिग्रह का पता
चला तो सोने में सुगन्ध वाली बात हो गई। राजा ने मंत्रियों
को बुलाकर परामर्श किया और कुछ चतुर दूत पोतनपुर भेज
दिये।

जिस दिन धारापुरी के राजा के दूत पोतनपुर
राजा की सभा में पहुँचे, उस दिन गजसिंह वहाँ नहीं था।
भ्रमण करने नगर से बाहर गया हुआ था। सब बातें जानने के
बाद पोतनपुर के राजा रूपसेन ने धारापुरी के दूतों को भी

दे दिया—

"गजसिंह का क्या पता कहाँ है। वह तो घूमते-फिरते माण्डवगढ़ से यहाँ आया था, सो जाने अब कहाँ चला गया। फिर उस आवारा का क्या ठिकाना ? पिता ने देशनिकाला दे दिया, सो मारा-मारा फिरता है। अपने राजा से कहना कि उस आवारा को अपना जामाता न बनायें।"

बस दूत वापस हो गए और धारापुरी पहुँच राजा रूपसेन द्वारा कही गई सब बातें अपने राजा सुरेन्द्र को बता दीं। राजा ने अपने मंत्री से कहा—

"मन्त्रिवर ! हम तो अपनी लड़की के हठ से परेशान हैं। अब कहाँ ढूँढ़े गजसिंह को ? मेरी राय में तो फूलदे को पोतनपुर की रानी ही बना दें। पोतनपुर के राजा रूपसेन भी तो कम नहीं।"

मंत्री बोला—

"राजन् ! विवाह तो मन-मिले का सौदा है। यदि आप पिता के अधिकार से राजकुमारी का विवाह पोतनपुर के राजा रूपसेन से कर भी देंगे तो दोनों का जीवन नरक हो जायगा।"

"तो फिर गजसिंह को कहाँ से पैदा करें ?" राजा सुरेन्द्र ने पूछा तो मन्त्री ने कहा—

"ऐसी जल्दी क्या है ? दूतों को माण्डवगढ़ भेजें। क्या पता गजसिंहकुमार माण्डवगढ़ मिल जाएँ।"

"अच्छी बात है।" राजा ने निःश्वास छोड़ते हुए

कहा—"यदि माण्डवगढ़ भी नहीं मिला तो फिर मैं रा
रूपसेन को ही अपना जामाता बनाऊँगा।"

मन्त्री ने फिर कुछ नहीं कहा। राजा ने फिर दू
माण्डवगढ़ भेजे। यथासमय वे सब निराश लौटे। तब हा
कर राजा सुरेन्द्र ने पोतनपुर के राजा के पास ही टीका भे
दिया। विवाह पक्का हो गया और तिथि भी निश्चित हो गई।
दोनों ओर तैयारियाँ होने लग गईं। धारापुरी के राजा ने
नगर के बाहर उद्यान में बरात के ठहरने की व्यवस्था कर
शुरू कर दिया। समय एक ही महीने का था और का
बहुत कुछ होना था। उद्यान के बाहर पड़े मैदान को शामि
में बाँधकर अस्थायी रूप से अश्वशाला, गजशाला और रथ
शाला बनवाई। बरात के ठहरने के लिए बड़े-छोटे शिवि
आदि की व्यवस्था थी।

इधर पोतनपुर का राजा रूपसेन भी तैयारी करने लगा।
उसने पड़ोसी मित्र राजाओं को निमन्त्रण भेज दिये। सुन्द
...री फूलदे को ब्याहने वह बड़े ठाट-बाट से—राजाओं के
...जा बनकर जाना चाहता था। इसका 'असली रह
गजसिंहकुमार को किसी-न-किसी तरह मालूम हो गया है
धारापुरी के दूत पहली बार गजसिंह की अनुपस्थिति में
पोतनपुर के भरे दरबार में आये थे। राजा रूपसेन ने दू
को गजसिंह के विरुद्ध भड़काया था। उस समय तो दरबा
अपने राजा के अनर्गल कथन का विरोध न कर सके, पर उ
में गजसिंह के कान भर दिये। दूसरी बार जब धारापुरी

टीका लेकर आये थे, तब गजसिंह भी सभा में था। गज-
ह ने मन-ही मन सोचा—'यह फूलदे मेरी माँग है और यह
ी राजा छल से मेरा टीका स्वयं ले रहा है। मैं भी कांटे
कांटे से निकालूंगा।'

चतुर गजसिंह ने अपने किसी भी व्यवहार से यह प्रकट
हीं किया कि सब मुझे मालूम है। बल्कि यही जाहिर किया
जैसे मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। राजा रूपसेन भी अपनी
फलता पर फूला नहीं समा रहा था।

बरात के प्रस्थान का समय आया। रूपसेन ने गजसिंह
मार को नगर-रक्षा का भार सौंपते हुए कहा—

"कुमार ! तुम्हारे ऊपर ही सब कुछ छोड़कर जा रहा
। आधी से अधिक सेना यहीं रहेगी। मेरे पीछे तुम नगर
सुरक्षा का ध्यान रखोगे, ऐसी मुझे आशा है। मंत्री आदि
मेरे साथ जा रहे हैं।"

कुमार ने आश्वासन दिया—

"यह तो मेरा कर्तव्य ही है। इसी कर्तव्य-पालन के
दले तो मुझे आपकी कृपा मिल रही है तो क्या इस उत्तर-
ायित्व से लापरवाह रहूँगा ? आप निश्चिन्त होकर धारापुरी
ाइए। यहाँ कोई खटका नहीं होगा।"

राजा रूपसेन ने निश्चिन्त होकर ही और साथ ही बड़े
त्साह के साथ धारापुरी को प्रस्थान किया। इधर गजसिंह ने
गर-रक्षक, आरक्षी सचिव तथा सभी प्रशासकों को बुलाकर
हा—

"मैं कुछ दिन के लिए बाहर जाता हूँ। मेरे पीछे राज्य व्यवस्था उसी तरह सम्हालना जैसे मेरे सामने सम्हाली थी। इतना भी ध्यान रहे कि मेरे प्रस्थान की बात बाद में राजा रूपसेन को भी मालूम न हो। वरना तो तुम जानते ही हो।"

धमकी और प्यार—दोनों तरह से समझा कर दामाद का लाड़ला गजसिंह भी धारापुरी की ओर चल दिया।

× × ×

द्वारपूजन होने में अभी बहुत देर थी। फूलदे भी सखियों के साथ अपना वर देखने चुपचाप गई। पेड़ की ओट में से उसने वरवेश में पोतनपुर के राजा रूपसेन को देखा तो सखी से बोली—

"सखी! यह तो मेरे गजसिंह कुमार नहीं हैं। मैं इनके साथ ब्याह नहीं करूँगी। मेरे साथ धोखा हुआ है।"

सखी ने पूछा—

"राजकुमारी! तुमने कैसे जाना कि ये वे नहीं हैं? वे भी तो पोतनपुर में ही रहते हैं।"

फूलदे बोली—

"सखी इतनी मोटी बात मैं नहीं समझूँगी? इनकी उम्र तो देख। दस बच्चों का बाप लगता है।"

सखी ने कहा—

"राजकन्ये! अब क्या हो सकता है? यदि तुम इस विवाह से इन्कार करोगी तो तुम्हारे पिता को बड़ा आघात

चलेगा।"

फूलदे ने दृढ़ता से कहा—

"भांवरें पड़ने से पहले सब कुछ हो सकता है। मैं ऐसी युक्ति करूंगी कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।"

"अर्थात् ?" सखी ने पूछा।

फूलदे ने सखी के कान में कहा—कुछ बताया और कान में ही बोली—

"जैसा मैंने तुझे सिखाया है, तू मेरे पिता से जाकर कह देना। चल अब राजभवन चलें।"

सखियों सहित फूलदे राजभवन लौटी और उसकी सखी तुरन्त ही उसके पिता चम्पापुरी के राजा सुरेन्द्र के पास जाकर बोली—

"पृथ्वीनाथ ! राजकुमारी का संदेश है कि द्वार-पूजन तथा विवाह की अन्य रीतियां तभी होंगी, जब वर कन्या की समस्याओं का समाधान करेगा।"

"समस्या ? कैसी समस्या ?" राजा ने कहा—"समस्या की यह नई समस्या कहां से आ गई ?"

राजकुमारी की सखी ने कहा—

"आप तो जानते ही हैं कि राजकुमारी को काव्य पहेलियां और काव्य समस्याएं पूछने तथा हल करने का शौक बालजीवन से ही रहा है। अतः पहले वे वर से काव्य समस्याएं पूछेंगी। उनके बनाये सात परदे हैं। वर इन **परदों**

को पहले तोड़ेगा, तब भांवरें पड़ेंगी।"

राजा मुस्कराया और बोला—

"इसमें क्या बात है? यह सब भी हो जायगा [illegible]
उद्यान में सूचना भिजवाता हूँ।"

सखी सफल मनोरथ होकर राजकुमारी के पास [illegible]
और उससे बोली—

"राजकन्ये! तुम्हारी युक्ति काम कर गई। पर [illegible]
खटका है कि यदि तुम्हारे परदे राजा रूपसेन ने ही तोड़ [illegible]
तो फिर क्या होगा?"

फूलदे बोली—

"असम्भव है सखी! सती की रक्षा उसका धर्म [illegible]
करता है। भांवरें नहीं पड़ीं तो क्या हुआ? मन से और [illegible]
अभिग्रह से मैं गजसिंहकुमार को ही अपना पति मान चुकी [illegible]
रूपसेन का बाप भी मेरे परदों को नहीं तोड़ पायगा। [illegible]
लौटकर ही जायगा।"

यही हुआ भी। जब राजा रूपसेन के पास [illegible]
पिता का समस्या-समाधान का संदेश पहुँचा तो [illegible]
गया। मंत्री से बोला—

"मंत्री! अब क्या करोगे? मैं तो काव्य की [illegible]
नहीं जानता। बिना ब्याह के लौटने में जगहँसाई होगी।"

मंत्री बोला—

"उपाय से सब काम ठीक हो जाते हैं। अभी मैं [illegible]
गया था तो मैंने एक योगी को धूनी रमाये देखा था। [illegible]

लोग बड़े चमत्कारी होते हैं। मैं उसी को ले आता हूँ। वर वेश में पहले उसी को राजकुमारी के पास ले चलेंगे। उसे पारिश्रमिक दे देंगे। फिर भाँवरें आपके साथ पड़ जायेंगी।"

"कुछ भी करो। पर जल्दी करो।"

मंत्री योगी के पास पहुँचा और उसे राजा के पास ले आया। यह योगी कौन था? वही था, जिसे फूलदे चाहती थी। माण्डवगढ़ का राजदुलारा गजसिंहकुमार ही पोतनपुर से योगी वेश में यहाँ आया था। राजा रूपसेन ने भक्तिभाव से अपनी बात योगी रूपी गजसिंह के सामने रखी—

"योगिराज! आप तो परोपकारी होते ही हैं। मुझे संकट से उबारो। मेरा काम बना दो भगवन्! फूलदे ने काव्य पहेली की नई बात अटका दी है।"

योगी बोला—

"राजन्! कपट सफल तो होता है, अवश्य होता है, पर अन्त तक सफल नहीं होता। अन्त में कपट अवश्य खुलता है। तुम्हारा यह काम तो मैं कर दूँगा कि राजकुमारी के प्रश्नों का उत्तर दे दूँ। इस कपट का अन्त क्या होगा, यह तुम्हारे भाग्य पर निर्भर है।"

कुमार ने रूपसेन के उस कपट की ओर संकेत किया था, जिस कपट से उसने कुमार का टीका अपने लिए ले लिया था। पर राजा रूपसेन दूसरी बात ही समझा। उसने योगी द्वारा पहेलियों का हल कराने वाले काम को **कपट समझा**,

सो बोला—

"यह सब मेरे ऊपर छोड़ो। इसमें कपट की क्या बात
है ? किराया देकर सभी काम कराते हैं। मैं भी तुम्हारे लिए
जहाँ कहोगे, वहीं एक भव्य मठ बनवा दूंगा।"

राजा रूपसेन की नासमझी पर गजसिंह कुमार मुस्-
राया। बोला कुछ नहीं। झटपट काम हुआ। गजसिंह [illegible]
वर वेश में सज गया था। गिने चुने लोगों के साथ परोक्ष [illegible]
यथार्थ वर गजसिंह फूलदे के भवन में पहुँचा। चुने हुए लोगों
में राजा रूपसेन और उसके चार मन्त्री भी थे। फूलदे पर्दे
के पीछे बैठी थी। पारदर्शक पर्दे में से उसने एक [illegible]
गजसिंह को देखा तो उस पर मोहित हो गई और मन-ही-मन
सोचा—'मेरा मन इन पर मोहित हुआ है तो निश्चय ही
वे ही होंगे। भीतर की आँखें अपने प्रियतम को झट पहचान
लेती हैं। सती का मन स्वप्न में भी गैर पुरुष पर [illegible]
नहीं होता। मेरा यह भी अनुमान है कि इनको राजा [illegible]
ने ही अपनी ओर से भेजा होगा।' इसी तरह राजकुमारी
फूलदे जाने क्या-क्या सोच रही थी। उसकी चारों सखियाँ
भी उसके पास बैठी थीं। कन्यापक्ष की ओर से और कोई न
था, क्योंकि राजा सुरेन्द्र ने राजकुमारी के इस काम को [illegible]
ही बालहठ माना था। वह विवाह के अन्य कामों में [illegible]

गजसिंह कुमार पर्दे के सामने एक भव्य आसन पर
बैठा था। उसी ने बात शुरू की—

"राजकन्ये ! क्या बातें पर्दे में से ही होंगी ?"

राजकुमारी बोली—

"परदे तोड़ने का काम तो आपको करना ही है। आप तोड़ें और मुझे पायें।"

"हाथी और सिंह तो परदे तोड़ा ही करते हैं।"

इन शब्दों में गजसिंह ने अपने नाम का संकेत दे दिया। मन-मन फूल उठी फूलदे। अब तो उसका मन हवा से करने लगा। उसने ये पंक्तियाँ कहीं—

"परदे तो केवल बातों के
वस्त्र न दीसे कोई।
बातों से ही तोड़ो प्यारे
होना हो सो होई॥"

कुमार ने तुरन्त उत्तर दिया—

"बातों से बातें काटूँगा
इसमें धारो न संशय।
कहो समस्या अपनी जल्दी
मुझको है किसका भय?"

कुमार के आशुकवित्व को देखकर पोतनपुर का राजा दंग रह गया। इधर फूलदे ने पीले परदे के रूप में की समस्या पीले रंग की पूछी—

झटपट बोली फूलकुमारी,
"पीत वर्ण का पहला।
कैसे टूटे पीला परदा,
नहले पर यह दहला॥"

गजसिंहकुमार ने तुरन्त उत्तर दिया—

"पीत वर्ण वसुधा का प्यारा,
और सुनो कुछ अन्य।
कंचन पीला सुरगुरु पीले,
पीत वर्ण है धन्य॥"

फूलदे बोली—

"लाल रंग की बातें कह दो,
प्यारे चतुर सुजान।
परदा तोड़ो लाल रंग का,
कैसे हो मतिमान॥"

कुमार ने उत्तर दिया—

"लाल रंग की सुनो कहानी,
प्यारी फूल-कुमारी।
लाल-लाल तव हाथ रंगे हैं,
मेंहदी की छवि प्यारी।
लाल वर्ण अनुराग-राग का,
लाल-अरुण तव अंग।
लाल रंग की उषा सुन्दरी,
लाल ही बाल पतंग॥"

यों बातों ही बातों में लाल रंग की परदा [illegible] हल भी गजसिंहकुमार ने कर दिया तो मुस्कराते हुए [illegible] ने नीले रंग के परदे को तोड़ने के लिए कहा। [illegible] इसका उत्तर भी काव्य पंक्तियों में इस प्रकार दिया—

"है वायुकाया नीलवर्णी,
टूटता यों नील परदा।
कल-कल बहती कालिन्दी का
नील जल ही बहता सदा॥"

हरे परदे के उत्तर में गजसिंहकुमार ने अनेक रंग गिनाते हुए कहा कि हरे पन्ने का हार पहनकर ब्याह की तैयारी करो। फिर प्रसन्न होते हुए फूलदे ने चौथे श्वेत रंग के परदे की समस्या रखी तो गजसिंह ने कहा—

"तेजस्काया शुभ्र श्वेत रंगी,
भामिनी प्यारी सुनो।
श्वेत-शुभ्र दन्त मुक्ता तुम्हारे
हंस ग्रीवा से चुनो।
गजदांतों का हार ले, ओ फूलादे नार।
उठो पहनकर कंठ में, मैं भी हूं तैयार॥"

इन सब बातों को सुन-सुन कर पोतनपुर के राजा रूप-सेन को बार-बार सन्देह होता था कि हो, न हो, यह गजसिंह ही है। वह बड़े चक्कर में था। कभी सोचता गजसिंह को तो मैं पोतनपुर नगर रक्षा का भार देकर छोड़ आया हूँ, वह यहाँ कैसे आ सकता है। यह सब दुविधा [illegible]
गजसिंहकुमार ने अपनी पहचान [illegible]
तो वह बिल्कुल बदला ही हुआ था
चेहरा वर-मुकुट (मौर) और
की लड़ियों से ढका हुआ था

आवाज भी बदल ली थी। वह फूलदे के प्रश्नों का उत्तर [illegible]
बदल कर देता था। लेकिन राजा रूपसेन को सन्देह [illegible]
होता था कि किसी न किसी बहाने गजसिंह गज [illegible]
आता था। पहली बार तो उसने राजकुमारी को [illegible]
दिया था कि हाथी और सिंह तो परदे तोड़ ही सकते हैं। [illegible]
बार गजदाँतों के हार की बात कह दी। राजा रूपसेन के मन
में आया कि इस किराये के वर को हटा ही दूँ। कहीं ऐसा
न हो कि इसी के कंठ में अभी वरमाला पड़ जाए। [illegible]
परिस्थिति की नाजुकता को देखकर मन्त्री ने उनका [illegible]
मसक दिया और राजा रूपसिंह चुप बैठा रहा।

इधर गजसिंहकुमार फूलदे के प्रश्नों का उत्तर दि[illegible]
जा रहा था। उसने शेष अन्य रंगों के परदे भी तोड़ दि[illegible]
राजकन्या की प्रतिज्ञा रूपी युक्ति सफल हो गई। सातों [illegible]
टूट चुके थे। बाद में काव्यात्मक नोंकझोंक भी हुई। [illegible]
एकाएक ही राजकुमारी उठी। हाथ के एक झटके से [illegible]
अपने और कुमार के बीच का झीना परदा अलग कर दि[illegible]
और बड़े वेग से कुमार के कंठ में पहले तो वरमाला डा[illegible]
और फिर बाहुमाला भी डाल दी।

कुमार उलझन में पड़ गया। वह राजा रूपसेन के [illegible]
[illegible] के दान के लिए वचनबद्ध था, अतः तत्काल [illegible]
राजकुमारी की बाँहें अपने कंठ से हटाईं और [illegible]
चलते-चलते कहता गया—

"माण्डव-मालव एक है, आदि-अन्त है एक ।
बाधा है बस बीच की, त्याग न अपनी टेक ॥"

यह कहते हुए गजसिंहकुमार एकदम बाहर चला गया । फिर उसका कुछ पता नहीं चला । राजा रूपसेन की जान में जान आई । वह अपने साथियों को लेकर पुनः उद्यान में पहुँचा । उद्यान में ही बरात ठहरी हुई थी । यथास्थान पहुँचने के बाद राजा रूपसेन ने अपना मन्त्री धारापुरी के राजा सुरेन्द्र के पास इस संदेश को देने के लिए भेजा कि समस्या-समाधान का काम समाप्त हो चुका है । राजकुमारी के कथित सातों परदे वर ने तोड़ दिये हैं । अब भांवरों की तैयारी कीजिए ।

राजा सुरेन्द्र भांवरों की तैयारी कराने लगा । इधर सखियाँ फूलदे को दुलहिन के वेश में सजाने लगीं । ब्याह के काम बड़े लम्बे होते हैं इसी काम में घण्टों लगने थे ।

शृंगार करती हुई राजकुमारी फूलदे गजसिंह कथित दोहे के अर्थ-गूढार्थ पर विचार करने लगी । उस चतुर-पण्डिता ने ठीक ही सोचा कि उक्त दोहे का अभिधात्मक—सीधा सादा शाब्दिक अर्थ तो यही है कि 'माण्डव' और 'मालव' का पहला वर्ण 'मा' और अन्तिम वर्ण 'व' एक ही है । आदि अन्त एक हुआ । बीच के अक्षर ही दोनों को अलग किये हुए हैं । इसका व्यंजनात्मक गूढार्थ यह है कि माण्डवगढ़ का राजकुमार गजसिंह और मालव की राजकुमारी फूलदे एक हैं । धारापुरी मालव की ही तो राजधानी है

का राजा रूपसेन आदि बीच में बाधक बने हुए हैं। इस प्रकार राजकुमारी को निश्चय हो गया कि जिसने मेरे परदे को तोड़ा और जिसके कंठ में मैंने वर माला डाली, वह राजकुमार गजसिंह ही हैं।

चतुर राजकुमारी ने संकेत से दासियों को हटा दिया और केवल चारों अन्तरंग सखियों को ही अपने पास रहने दिया। फिर उसने सखियों को मन की बात बताते हुए कहा—

"सखियो! यदि मेरी भाँवरें पोतनपुर के रा[illegible] रूपसिंह के साथ पड़ गईं तो अनर्थ हो जायगा। [illegible] सात भाँवरों के चक्कर लगाने पड़ते हैं, [illegible] जीवन की अन्तिम साँस तक चलना पड़ता है। यदि मैं ऐसा नहीं करूंगी तो भाँवरों की शाश्वत मर्यादा मिट जायेगी फिर मुझे रूपसेन की ही बनना पड़ेगा। विवाह तो एक ही होता है, सो पहले मन से और फिर वरमाला डालकर [illegible] पक्का विवाह माण्डवगढ़ के राजकुमार गजसिंह के साथ हो गया है।"

एक सखी बोली—

"तुम्हारी सब बातें ठीक हैं, पर गजसिंहकुमार का कहीं पता नहीं है और सब यही जानते हैं कि रूपसेन [illegible] ने ही तुम्हारे परदे तोड़े हैं तथा उन्हीं के कंठ में तुमने वरमाला डाली है। अतः तुम भाँवरों से इन्कार कैसे करोगी?"

राजकुमारी बोली—

"यदि इन्कार नहीं करूंगी तो विष खाकर प्राणान्त ो कर सकूंगी ? तू ही बता, पर-पुरुष की अंकशायिनी कैसे नूं ?"

सखी ने कहा—

"धैर्य के साथ कोई युक्ति निकालो। शीलवती की विजय सदा से होती आई है।"

राजकुमारी बोली—

"युक्ति तो निकली निकलाई है। तू पिता से जाकर ह दे कि मेरा विवाह वरमाला डालने की रीति से ही म्पन्न माना जाए और बिना भांवरों के ही मुझे पोतनपुर ो लिये विदा किया जाय। भांवरे मैं नहीं डालूंगी।"

ऐसा ही हो गया। मालवराज सुरेन्द्र ने कुछ सोचक- र अपनी लाड़ली बेटी की बात मान ली। इसमें कोई हर्ज ी नहीं था। अतः उन्होंने पोतनपुर के राजा अर्थात् अपने ावकथित जामाता रूपसेन के पास संदेश भिजवाया कि ब भांवरें नहीं पड़ेगी। वैसे ही मैं यथासमय अपनी बेटी ो आपके साथ विदा कर दूंगा। बेटी ने वरमाला डालने ो ही विवाह मान लिया है। इस संदेश से राजा रूपसेन ो प्रसन्न हो गया। भांवरें पड़े न पड़े। मुख्य बात तो फूलदे ा दुलहिन के रूप में उसके साथ जाना था, तो वह आ ही ही थी।

यथासमय बरात विदा हुई। शाम्भवीने का

फूलदे डोली से उतरकर रथ में बैठी। उसी रथ में रूपसेन भी था। राजा सुरेन्द्र ने आँसू पोंछकर बेटी को वि-दी। रानी ने भवन में ही बहुत-सी बातें समझाई [illegible] था कि बेटी! तेरे पति राजा रूपसेन के और भी [illegible] हैं। तू अपनी सौतों को भी बड़ी बहन ही मानना।

बरात चल दी। आगे पीछे सेना थी—चतुरंगिणी [illegible] बीच में फूलदे और रूपसेन का रथ था। [illegible] पोतनपुर के बीच एक बन में बरात का पड़ाव पड़ा। पुनः बरात चलने को हुई तो फूलदे ने राजा [illegible] कहा—

"मैं अब यहाँ से आगे नहीं जाऊँगी। यहीं [illegible] पति की मंगल कामना के लिए बारह वर्ष तक [illegible]

"बारह वर्ष तक?" आश्चर्य से बोला राजा [illegible]

"मुझ पर ऐसा क्या संकट है, जिसके लिए तुम [illegible] वर्ष तक तप करोगी?"

फूलदे बोली—

"पतिव्रता नारियाँ पति के भविष्य के लिए [illegible] हैं। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि जो बात मन में ठान [illegible] उसे करती अवश्य हूँ। मेरे पिता ने मेरी कोई बात [illegible] नहीं टाली। आपसे काव्यात्मक समस्याओं [illegible] भांवरों का न पड़कर वरमाला से ही विवाह [illegible] उदाहरण हैं। तो क्या आप मेरी बात को टाल [illegible] भले ही टालें, पर मैं तो नहीं टलूँगी अपनी बात से।"

राजा रूपसेन फूलदे के ओजस्वी वक्तव्य और उसके तेज से दब गया। बोला—

"तुम जैसा कहोगी वैसा करूँगा। पर इस जंगल में तुम अकेली तप कैसे करोगी?"

फूलदे बोली—

"तप तो अकेले ही होता है। फिर भी बारह वर्ष तक मुझे यहां कैसे रहना है, इसके लिए भी मैंने सोच लिया है। मेरे पास काफी रत्न हैं। इन रत्नों से मैं यहां एक सरोवर बनवाऊँगी। यहीं अपने लिए एक सुन्दर कुटीर भी बनवा लूंगी। अपनी सखियों को मैं साथ लाई हूँ, वे मेरे साथ रहेंगी। फिर मैं अकेली कैसे हो गई? पति की प्रतिमा सदा मेरे हृदय में रहेगी।"

मूर्ख रूपसेन फूलदे की पतिभक्ति पर मुग्ध हो गया। वह मूर्ख यह नहीं समझ पाया कि फूलदे गजसिंह की प्रतिमा को ही अपने हृदय में धारण करेगी, मेरी नहीं। उसने तो यही समझा कि यह सब प्रपञ्च मेरे सुख के लिए ही कर रही है। कुछ सोचने के बाद उसने फूलदे से कहा—

"अब तो मेरा धन तुम्हारा ही है। अतः सरोवर आदि की व्यवस्था मैं अपने धन से ही किये देता हूँ।"

फूलदे ने निषेध करते हुए कहा—

"नहीं! मेरा अभिग्रह ही ऐसा है। इस अभिग्रहपूर्ति के बाद पति का सब कुछ मेरा है और मैं तन-मन-धन से पति की।"

बस फिर तो फूलदे की ही बात रही। राजा ... पर्याप्त मजदूर सरोवर बनवाने के लिए छोड़ दिए। ... बनने लगा। सब सामग्री धारापुरी से फूलदे ने मँगा ... एक वर्ष में पक्का स्फटिक घाटों वाला विशाल सरोवर ... हो गया। फूलदे ने मजदूरों, कारीगरों की मजदूरी ... उन्हें विदा कर दिया। अब वह अपनी सखियों के साथ ... ही सरोवर के समीप स्थित कुटीर में रहने लगी। ... अधिक समय वह नमस्कार मन्त्र का जाप करती और ... मूल फल खाकर रहती। उसके मन में ... यह दोहा गूंजता रहता—

"माण्डव-मालव एक हैं, आदि-अन्त है एक।
बाधा है बस बीच की, त्याग न अपनी टेक॥"

उसके पति-मिलन का विश्वास पति के ... निर्देश पर टिका था कि "त्याग न अपनी टेक"। फूलदे ... टेक पर जमी थी और उसे विश्वास था कि ... उसका मन-मीत उससे यहीं आकर मिलेगा।

8

राजा रूपसिंह जब दुलहिन बिना सूनी-सी बरात लेकर पोतनपुर पहुँचा तो उसे गजसिंहकुमार वैसा ही मिला, जैसा छोड़ गया था। उसका रहा-सहा सन्देह भी जाता रहा। उसे निश्चय हो गया कि मेरे पीछे गजसिंह यहीं रहा है। योगी रूपी जिस युवक से मैंने अपना काम निकलवाया था, वह तो कोई और ही होगा। पर वह मुझसे मिले बिना चला कहाँ गया? अपने कार्य का पुरस्कार लेता जाता। मैंने तो उसके लिए मठ बनवाने की बात भी कही थी। परोपकारी योगी बिना कुछ लिये ही दूसरों का काम करते हैं। इस तरह सोच-विचार करके पोतनपुर नरेश रूपसेन ने अपना मन आश्वस्त कर लिया। लेकिन दुलहिन साथ नहीं आई, इसका मलाल सभी को हुआ।

गजसिंह को फूलदे के अभिग्रह का पता राजा रूपसेन से ही चला था। रूपसेन ने सार्वजनिक रूप से सभी को बताया था कि उसकी नववधू उसी की मंगल-कामना के लिए दोनों राज्यों के बीच वन में तप-साधना कर रही है। बात भी छिपाने की नहीं थी। यह तो किसी भी पति के लिए गौरव की बात है कि उसकी पत्नी उसके लिए कठोर [illegible]।

लेकिन रूपसेन का गौरवान्वित होना मात्र भ्रम था और गज-
सिंह द्वारा गौरव का अनुभव करना एक सार्थकता थी। गज-
फूलदे के काव्य पाण्डित्य, धर्मनिष्ठा और पतिव्रत धर्म की मन-
ही मन सराहना करता था। पर अपनी परिस्थितियों से विवश
होने के कारण वह फूलदे को ला नहीं सकता था। वह कि
सोचा करता था—'बारह वर्ष तक तो ऐसे ही भटकना है।
फूलदे को माण्डवगढ़ लेकर जा नहीं सकता और यहाँ चम्पा-
पुर में भी ला नहीं सकता। क्योंकि यहाँ सभी जानते हैं
तो वह राजा रूपसेन की ही रानी है। उधर पुष्पपुर की
राजदुलारी चम्पकमाला भी वन में वट वृक्ष के नीचे रह कर
रही है और इधर फूलदे सरोवर बनवाकर साधना कर रही
है। जाने हम सबने पूर्वभव में ऐसे क्या पाप किये थे कि हम
पति-पत्नी आपस में मिल भी नहीं सकते? कभी तो ये
दुर्दिन के बारह वर्ष बीतेंगे और एक जगह होंगे सब।'

ऐसे ही दिन बीत रहे थे और चार वर्ष बीत गये।
पति-मिलन की साधना करते हुए फूलदे चार वर्ष से सरोवर
पर ही रहती थी। गजसिंहकुमार के मन में उससे मिलने की
ा उठी सो एक दिन घोड़े पर सवार होकर वहीं पहुँ
ँच गया, जहाँ फूलदे थी। सरोवर पर पहुँच कर गजसिंह-
कुमार और घोड़े को पानी पिलाया। फूलदे ने पहचान-
कर अपनी सखी को कुमार के पास भेजा। सखी ने कुमार से
कहा—

"आपको इस सरोवर की मालकिन बुलाती है।"

"क्यों बुलाती हैं ?" कुमार ने प्रश्न किया।

फूलदे की सखी बोली—

"आपने घोड़े को मालकिन की अनुमति लिए बिना
नके सरोवर का पानी पिलाया है, इसलिए आपको वहाँ
लना है।"

"चलो चलते हैं।" यह कहते हुए गजसिंह फूलदे की
खी के पीछे-पीछे चल दिया। फूलदे और कुमार—दोनों
एक दूसरे को पहचान लिया। घोड़े से उतरा कुमार और
लदे अपने आसन से खड़ी हो गई। अब क्या कहे राज-
मारी ? अन्त में घोड़े के पानी पीने के बहाने से ही उसने
त छेड़ी। उसने कहा—

"आपने मेरी अनुमति के बिना ही घोड़े को पानी कैसे
पिलाया ?"

गजसिंह बोला—

"मुझे क्या पता था आप पानी का भी मूल्य लेती हैं ?
ाप-जोख करके आप यह बता दें कि मेरे घोड़े ने आपके
रोवर का कितना पानी घटाया है, उतने का ही मूल्य मैं दे
गा।"

कुमार के चातुर्य पर फूलदे मन-ही-मन पुलकित हुई।
फिर भी बोली—

"तो मूल्य देंगे आप ? पानी का तोल तो मैं अवश्य
ता दूंगी, पर आप मूल्य नहीं दे पायेंगे। यदि मूल्य देने की
ी सामर्थ्य है तो बतायें एक लड़की को आप बीच मँझधार में

छोड़ कर क्यों भाग गए । क्या यही आपका [illegible] कौन पुरुष होगा, जो अपनी ही विवाहिता [illegible] के लिए छोड़कर भाग जायगा ?"

कहते-कहते रो पड़ी फूलदे । उसका [illegible] गया । आगे कुछ कह नहीं पाई । गजसिंह ने उसे [illegible] लिया और बोला—

"मैं बड़ा स्वार्थी हूँ प्रिये ! यही तो [illegible] चाहिए ? कंचन को कुन्दन बनाने के लिए मैं भट्ठी में [illegible] गया था । मुझे भरोसा भी तो था कि मेरे [illegible] की तरह तपोगी और कुन्दन बन जाओगी ।

"प्रिये । तुम्हीं बताओ मैं क्या विवश नहीं था ? न भागता तो पोतनपुर का राजा मुझे तुम्हारे [illegible] करने देता ? जाने क्या हो जाता । दूसरे, मैं [illegible] कि तुम्हारी काव्य समस्याओं का समाधान [illegible] हो जाऊं ।"

"यह तो मैं भी जानती हूँ कि जो [illegible] उसे हर हालत में मिलता ही है ।" राजकुमारी [illegible] कहा—"कुछ भी हो, अब मैं आपको नहीं [illegible] अपने पिता को सब कुछ बताऊँगी । कोई कारण [illegible] परम प्रसन्न न हों ।"

गजसिंह मौन रहा । फिर [illegible] होती रही । सखियाँ [illegible] ले आईं । कुमार ने [illegible] फूलदे ने भी खाये । दोनों [illegible]

ही बीती।

रात बिताने के बाद गजसिंह कुमार नित्य कर्म से वृत्त हुआ और धर्मक्रियाएं सम्पन्न करने के बाद फून्दे बोला—

"प्रिये ! अब मैं तुम्हें अपनी योजना समझाता हूं। अब का काम तुम्हारी युक्तियों से पूरा हुआ और अब आगे का म हम दोनों मिलकर करेंगे। अभी तुम अपने पिता को द्र गत बताओ। अभी मैं सब की नजरों से छिपकर रहूंगा।

"प्रिये ! अब तो मैं सीधा पोतनपुर ही जाऊंगा। क्यों मेरी अनुपस्थिति पोतनपुर के राजा रूपसेन के मन में देह पैदा करेगी। मुझे नित्य उसकी सभा में उपस्थित बने ना है।"

इतना सुनने के बाद राजकुमारी बोली—

"आप फिर जाने की बात कहने लगे ? अब मैं आपको ों जाने दूंगी।"

गजसिंह बोला—

"पहले पूरी बात तो सुन लो। मैं ऐसी योजना बना । हूं कि हमारा-तुम्हारा मिलना रोज होता रहेगा। नपुर में एक मालिन रहती है। पहली बार जब मैं नपुर में आया था तो उस मालिन के सूखे उजड़े बाग में रा था। जाने कैसे रातोंरात उसका बाग हरा-भरा हो ।, पर वह मालिन इसका श्रेय मुझे ही देती है और ो मानती भी बहुत है। मैं मालिन के घर से राजा के भवन

तक एक गुप्तद्वार बनवाता हूँ। पोतनपुर के [illegible] और शिल्पकार मुझे बहुत मानते हैं। [illegible] तैयार हो जायगी।"

फूलदे बोली—

"तो क्या मुझे राजा रूपसेन के [illegible] पड़ेगा?"

"अभी नहीं।" गजसिंह बोला—"[illegible] अभी तुम यहीं रहो। फिर राजा के भवन में रहने में [illegible] ही क्या है? जगजाहिर तो तुम उसी की रानी हो। उससे कहना कि बारह वर्ष पूरे होने तक मैं [illegible] ही अपना व्रत पालूंगी। फिर मैं निज [illegible]। [illegible] बाद शौर्यपराक्रम के साथ ही यह भेद प्रकट होगा।"

क्षीण-सी मुस्कान फूलदे के ओठों पर [illegible] बोली—

"जब चार वर्ष आपके वियोग में काट दिए [illegible] महीने भी काट ही दूंगी। पर ये छह महीने [illegible] बीतेंगे।"

"सो तो मैं भी जानता हूँ।" गजसिंह ने [illegible] 'वियोग-पीड़ा केवल नारी को ही नहीं होती, [illegible] [illegible]ती है। फिर प्रतीक्षा करने में तो नारी नर से [illegible] रही है।"

फूलदे ने हँसकर कहा—

"यह बात तो सच है, [illegible]"

वियोग काटने में बहुत छटपटाती है ।"

"अच्छा, तो मैं चलूं । देर हो रही है ।"

यह कहते हुए गजसिंह ने घोड़े को एड़ लगाई । चलते-चलते उसने हाथ उठाया । फूलदे ने आवाज देकर कहा—

"घोड़े के पानी का मूल्य तो देते जाते ?"

दूर से ही कुमार ने कहा—

"इकट्ठा ही दूंगा ।"

बस वह ओझल हो गया । घोड़े की टापों से उड़ती धूल को ही फूलदे देखती रही । यथासमय गजसिंह पोतनपुर की राजसभा में पहुंच गया । वह नित्य राजसभा आता था । राजा की अनुमति लेकर वह अब पुनः मालिन के घर में ही रहने लगा । राजा रूपसेन ने पूछा भी कि यहाँ जो तुमको राज्य की ओर से भवन मिला है, उसमें क्या परेशानी है घ । कुमार ने कहा कि मेरा पोतनपुर के जीवन का प्रारम्भ मालिन के घर से ही हुआ है । अतः मैं अपनी पुरानी औकात को याद करते हुए उसी के घर रहा करूंगा । इस पर राजा रूपसेन को भी कोई आपत्ति नहीं हुई ।

गजसिंह ने पांच महीने में ही मालिन के महल से राजभवन तक सुरंग तैयार कर ली । जिस बड़े कमरे में सुरंग का द्वार खुलता था, उसमें नीचे एक भूगृह भी था, अर्थात् तहखाना । सब काम ठीक करने के बाद एक दिन रात को गजसिंह फूलदे के पास पहुंच गया और अपनी सफलता की बात बताने के बाद कहा—

"जैसा मैंने तुम्हें बताया है, वैसा ही [illegible] रूपसेन के पास भिजवा देना। और हाँ, वह तुम्हें [illegible] सो चली तो जाओगी ही। इसके बाद जब वह तुम्हें [illegible] ले जाये तो तुम कहना कि मैं सभी कमरे देखकर [illegible] एक कमरा निश्चित करूँगी। तुम सुरंगद्वार [illegible] रहने के लिए माँगना।"

इतना कहने के साथ ही कुमार ने सुरंग [illegible] कई पहचानें बता दीं। इनमें मुख्य पहचान यह थी [illegible] के फर्श पर जहाँ सुरंग-द्वार था, वहाँ एक [illegible] चिह्न भी बना था। फूलदे को सब तरह से [illegible] कुमार पुनः पोतनपुर पहुँच गया।

इधर फूलदे ने राजा रूपसेन को पत्र लिखा—

"नरदेव ! फूलदे की प्रार्थना सुनें। मैंने नगर [illegible] वन में बारह वर्ष तक पति की मंगल-कामना के [illegible] करने का अभिग्रह किया था। वह अभिग्रह ज्यों का [illegible] पर उसमें अब थोड़ा-सा अन्तर हो गया है।

"नरनाथ ! साढ़े चार वर्ष तो वन में बीत [illegible] शेष साढ़े सात वर्ष मैं नगर में—आपके भवन में ही [illegible] ऊँगी। यह फेर-बदल केवल स्थान का ही है। शेष [illegible] वत् ही रहेगा। अर्थात् भवन कक्ष में भी मैं एकान्त में [illegible] ही रहकर धर्माराधन करूँगी और पूर्ण ब्रह्मचर्य से [illegible] अतः मेरी व्यवस्था करायें।

—[illegible]

पुनश्च—

"अपने लिए नरदेव और नरनाथ सम्बोधन को अन्यथा
ा समझना। जिस दिन मेरे व्रत-नियम का सुखद-अभीप्सित
रिणाम सामने आयेगा, उसी दिन मैं खुल्लमखुल्ला अपने
ति को प्राणनाथ और प्राणेश्वर कहूँगी।"

अपने चातुर्यपूर्ण पत्र में फूलदे झूठ भी नहीं बोली और
जा रूपसेन को सन्देह भी नहीं होने दिया। यह पत्र पाकर
जा रूपसेन बड़ा प्रसन्न हुआ। तुरन्त रथादि तैयार कराये
ार फूलदे को ले आया। जब फूलदे भवन में पहुँची तो पूर्व
श्चयानुसार उसने एक-एक करके सब कक्ष देखे। जब फर्श
र छोटा-सा स्वास्तिक चिह्न जिस कक्ष में दीखा, उसे ही
पने लिए चुन लिया। फर्श के ऊपर जो सुरंग द्वार था,
ी के ऊपर फूलदे ने अपना पलंग बिछवाया। अब वह उसी
रहने लगी। धारापुरी से आई उसकी चारों सखियाँ वन-
ध्य सरोवर पर रहती थीं और यहाँ भी साथ ही थीं। ये
ारों बड़ी चतुर और स्वामिनी सखी के लिए प्राणोत्सर्ग
रने वाली थीं। भवन और राजा रूपसेन की गतिविधियों
ी सब सूचनाएँ ये समय-समय पर सखी स्वामिनी फूलदे को
ती रहती थीं।

अब फूलदे के जीवन की गति ऐसी बन गई, जिसमें वह
हुत खुश थी। रात को चुपचाप सुरंगद्वार से गजसिंह फूलदे
पास आता था और रात भर उसी के पास रहता। रात-
ात भर दोनों चौपड़ खेलते, काव्य चर्चा करते और भिन्न-
कार प्रसंगों पर बतरस का रस लेते। ऐसे ही रातें बीततीं;

दिन भी बीतते।

एक दिन सवेरे गजसिंह कुछ देर तक सोता रहा ...
जाने की तैयारी कर ही रहा था कि राजा रूपसेन ने ...
दी। गजसिंह हड़बड़ाकर नीचे तलघर में छिप गया और ...
जाते अपना हार छोड़ गया। जब राजा रूपसेन आया तो ...
सन्देह हुआ। उसने पूछा—

"यह हार किसका है ?"

"मेरा ही है।" फूलदे ने बताया।

राजा रूपसेन ने वह हार तोड़ दिया और बोला—

"पुरुषों के हार पुरुष ही बींध सकते हैं। यदि तुम्हारा ...
ही है तो इसे बींधकर दिखाओ।"

फूलदे ने कहा—

"आप बाहर जाएं। मैं एकान्त में इस हार को ...
का-त्यों कर दूंगी।"

राजा रूपसेन मन-ही-मन कुढ़कर बाहर हो गया। ...
से पट बन्द करके फूलदे तलघर में पहुंची। गजसिंह ने ...
ठीक करके फूलदे को दे दिया। फूलदे हार लेकर ...
... वह हार राजा रूपसेन को दिखा दिया। रूपसेन ...
तो हो गया पर मन का सन्देह दूर नहीं हुआ। उसने ...
सोचा—'रोज की चोरी कभी तो खुलेगी। एक दिन ...
रंगे हाथों पकड़ूंगा। मैं क्या जानता नहीं, यह हार ...
का है। उसके कंठ में मैं इसे वर्षों से देख रहा हूं। ...
वह सभा में आया कि नहीं।' यह सब सोचते हुए राजा ...

अपने कक्ष में सभायोग्य कपड़े बदलने गया। इतनी देर में सिंह सुरंग मार्ग से मालिन के घर पहुँचा और फिर राज-सभा आ गया। जब राजा रूपसेन सभा में आया तो उसे गज-यथा आसन पर बैठा मिला। बड़ा आश्चर्य हुआ राजा सेन को। उसके मन में बड़ी खलबली होने लगी।

इधर फूलदे ने अपनी एक सखी से कहा—

"सखी ! एक-न-एक दिन तो यह भेद खुलना ही है। खुलना है तो मैं अब खोलना चाहती हूँ। अपने ही पति चोरी-चोरी मिलूं, यह एक विडम्बना ही है। अतः तू पुरुष वेश बनाकर सीधी धारापुरी जा और मेरा पत्र पिता राजा सुरेन्द्र को देना। जबानी भी उन्हें सब कुछ ना। उनसे कहना कि उनके जामाता पर संकट है। सेना सहायता को आवें।"

इसके बाद फूलदे ने अपने पिता को एक पत्र लिखा, उसमें से अन्त तक सब बातें स्पष्ट करके लिख दी। यथासमय सखी धारापुरी पहुँच गई। धारानरेश ने अपनी पुत्री पत्र पढ़ा तो बड़े चकराये। फिर अपनी पुत्री के चातुर्य परम प्रसन्न भी हुए। पोतनपुर के राजा रूपसेन की धूर्तता बहुत क्रुद्ध भी हुए। तुरन्त सेना सजाई और पोतनपुर लिए प्रस्थान कर दिया।

इधर कई दिन के प्रयास में राजा रूपसेन को एक दिन र मिल गया। वह बहुत सवेरे उठा और फूलदे के कक्ष-के सटकर खड़ा हो गया। फूलदे के साथ उसने पुरुष

स्वर की हँसी के कहकहे भी सुने। तुरन्त द्वार ...
गर्जसिंह तुरन्त सुरंगद्वार से मालिन के घर भाग गया। ...
कर कुछ देर में ही फूलदे ने द्वार खोला। ...
राजा रूपसेन ने पूछा—

"किससे बातें कर रही थी?"

"अपने प्राणेश्वर से।"

फूलदे ने टका-सा जवाब दिया।

जल-भुन गया राजा रूपसेन। पुनः बोला—

"सती-सावित्री! यह बता तेरे कितने पति हैं? ...
तो मैं हूँ तेरा। तू अपने किस उपपति से बातें कर रही ...

"राम राम राम!" अपने दोनों कानों पर हाथ ...
हुए फूलदे मुस्कराई। बोली—"कैसी पाप की बातें ...
आप? सती-सावित्री के एक ही पति होता है। ...
थाम कर सुन लो। आप-जैसे पुरुष तो मेरे भाई हैं। ...
प्राणाधार तो एक गजसिंहकुमार ही हैं, जो ...
राजकुमार हैं। उन्होंने ही मेरी परदा-समस्याओं का ...
किया। उनके कण्ठ में ही मैंने वरमाला डाली है। ...
अपनी बहन—परदारा के प्रति ऐसे भाव रखते हैं?"

"अब उस गर्जसिंह को ही देखूँगा।" कह ...
रूपसेन राजा ने क्रोध में पैर पटके और ...
गया। यहाँ उसे गर्जसिंह बैठा मिला। राजा ने ...
उससे कहा—

"गर्जसिंह! तुम मेरे नौकर हो। ...

नी नौकरी से हटाता हूँ। मेरी राजसभा, मेरा नगर और
ा राज्य छोड़कर कहीं भी चले जाओ।"

"अवश्य चला जाऊँगा।" गजसिंह ने कहा—"पर मेरा
न तो मुझे दे दो। नरभक्षी असुर से मैंने आपके नगर की
ा की। चोरों से आपके नगर को सुरक्षित किया। जब
प धारापुरी गए थे, तब भी नगर की सुरक्षा व्यवस्था मैंने
। ये सब काम क्या रोटी-कपड़े पर होंगे? लोक-परिषद्
न्याय कराओ।"

गजसिंह को टालने के लिए राजा रूपसेन मुँहमाँगा धन
के लिए भी तैयार था। अतः बोला—

"फिर तुम यह भी कहोगे कि वेतन कम दिया। अतः
सोच-समझकर बता दो क्या दे दूं। वेतन लो और अपना
रास्ता पकड़ो।"

"बस बीस सहस्र मुद्रा ही दे दो।"

राजा ने तुरन्त बीस सहस्र स्वर्णमुद्रा खजाने से
गजसिंह को दिलवा दी। गजसिंह ने सुवर्ण मुद्राओं की पोट
ली और बाँटना शुरू कर दिया। सभी जरूरतमन्दों को
ा और बहुत-कुछ मालिन को भी दे दिया। जब वह नगर
छोड़कर चला तो लोग रोते थे। बहुत सारे लोग काफी दूर
उसके पीछे-पीछे गए। राजा रूपसेन को चकमा देने के
लिए ही उसने ऐसा किया था। न्याय-नीति से उसे रूपसेन
नौकरी से मुक्त होकर ही कुछ करना था।

कुछ समय बाद गजसिंह पुनः लौटकर राजा की सभा

में आया । राजा ने आश्चर्यपूर्ण क्रोध के साथ पूछा—

"अब क्यों आये हो ?"

गजसिंह ने निर्भीकता से कहा—

"राजन् ! अब तो मैं आपका नौकर नहीं हूँ । मैं ... हूँ, आपको यह चेतावनी देने आया हूँ कि मेरी पत्नी ... भवन में है । उसे सौंप दो । वरना फिर युद्ध के लिए ... हो जाओ । सिंह की पत्नी गीदड़ नहीं हो सकती ।"

रूपसेन ने क्रोध में ही कहा—

"टीका मेरे लिए चढ़ा था । विवाह मेरे साथ ... हुआ था । तुम कौन होते हो, फूलदे को अपनी बताने ... तुम से मैं क्या युद्ध करूँगा ? तुम्हें तो मेरे वीर सैनिक ठिकाने लगा देंगे ।"

यह कह राजा रूपसेन ने अपने सशस्त्र सैनिकों को आदेश दिया—

"देखते क्या हो ? पकड़ लो इसे ।"

गजसिंह ने भी खड्ग खींच लिया । किसी भी ... का इतना साहस नहीं हुआ कि खड़ा भी हो जाता । ... गजसिंह के शौर्य का भय था और कुछ उससे लगाव ... सैनिकों ने राजा रूपसेन के आदेश की अवज्ञा कर दी । देखिये, तभी एक सूचक ने हाँफते हुए सूचना दी—

"पृथ्वीनाथ ! धारानरेश चतुरंगिणी सेना लेकर ...पुर पर चढ़ाई करने आ रहे हैं ।"

राजा रूपसेन के हाथ-पाँव फूल गए । ...

...सका मुख पीला पड़ गया। फिर तो धारानरेश का दूत भी
...गया। उसने स्पष्ट रूप से कारण बताकर युद्ध की चुनौती
दी। अब तो पाँसा पूरी तरह पलट गया। सचिवों को
...कर रूपसेन धारानरेश का स्वागत करने गया। उन्होंने
...नपुर के राजा रूपसेन को बहुत फटकारा।

अन्त में वही हुआ, जो होना था। रूपसेन ने गजसिंह, फूलदे और राजा सुरेन्द्र, सबसे क्षमा माँगी। राजा सुरेन्द्र ...श्री और जामाता को साथ ले गए। एक बार फिर धारापुरी ...वधू-सी सजी। गजसिंह और फूलदे के विवाह का उत्सव ...: मनाया गया। दोनों अभी तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन ...र रहे थे। अब सात भाँवरें भी पड़ीं।

राजा सुरेन्द्र ने अपने जामाता को पन्द्रह गाँव दहेज में ...दिये। अब गजसिंह राज जामाता के साथ पन्द्रह गाँवों का ...लक भी था। अलग भवन, दास-दासी, सेना आदि के साथ ...ए सुख से अपना दाम्पत्यजीवन बिता रहा था। सब काम ...यावत् करते हुए उसका अश्वारोहण का पुराना शौक अब ...ी ज्यों-का-त्यों बना था। शाम-सवेरे नित्य और जैसे जब ...ी मन होता वह घोड़ा दौड़ाते हुए बहुत दूर-दूर तक घूमने ...िकल जाता। ऐसे ही उसके दिन बीतते थे।

9

एक दिन घूमते-घूमते गजसिंहकुमार द्वारापुरी से बहुत दूर निकल गया। गंगा किनारे के एक वन में अस्तंगत सूर्य की लाली ने उसे आगे बढ़ने से रोक दिया, नहीं तो वह आगे भी जाता। पुण्य सलिला गंगा की महिमा ही कुछ और है। घोड़े को पेड़ से बाँधकर कुमार गजसिंह भागीरथी के धवल सौन्दर्य को देखने लगा। एकाएक उसकी दृष्टि वृक्ष तल में बैठे ध्यानावस्थित मुनि पर टिकी। धीर-पग से वह कायोत्सर्ग में लीन मुनि के निकट पहुँचा और भाववन्दना कर बैठ गया। मुनि का ध्यान पूरा होने की प्रतीक्षा करने लगा। मन ही मन उसने अपने भाग्य को सराहा—'आज का दिन कितना पुण्यमय है कि मुझे वीतरागी मुनि के दर्शन हुए। सभी जन धन्य हैं, जिन्हें सन्तदर्शन होते हैं। साधु भी हमारी ही तरह मानव हैं, पर कितना अन्तर है हम संसारियों में और संसार-त्यागी सन्तों में! मैं वन में आकर भी संसार त्यागी नहीं हूँ और ये श्रमण संसार में रहकर भी संसार त्यागी हैं। बहुत लोग पूछते हैं और शंका करते हैं कि संसार में रहकर ये संसार त्यागी कैसे माने जाएँ। ऐसी शंका वही लोग करते हैं जो संसार का अर्थ नहीं जानते। संसार है क्या? जहाँ कोई अपना न हो, वहाँ तक कि

न हों, वही संसार है। अतः जो संसार के झूठे अपनत्व में फंसे हैं, वे वन में रहकर भी संसारी हैं। यह दृश्य-जगत संसार नहीं है, बल्कि माता-पिता, भाई, पुत्र, पत्नी अपना शरीर, धन, भवन, कुटुम्ब और मित्रादि यही सब चीजें संसार हैं। इनका झूठा अपनत्व त्याग देना संसार में रहते हुए भी संसार त्याग देना है।'

गजसिंह अभी जाने क्या-क्या सोचता कि उसका ध्यान एक तोते की टें-टें ने भंग कर दिया। लाल चोंच, हरे पंख और गले में प्रकृति द्वारा पहनाई गई नीली कंठी। बड़ा भला लग रहा था यह तोता। पहले यह डाल पर ऊपर बैठा था और फिर टें टें करते हुए नीचे उतर आया। यह शुक बार-बार मुनि के चरणों में लोटने लगा। ऐसा लगता था यह किसी कष्ट से छटपटा रहा है। थोड़ी ही देर बाद मुनि का ध्यान पूरा हो गया। फिर कुमार ने मुनि की विधिवत् वंदना की। तदनन्तर कुमार ने पूछा—

"महामुने! यह शुक बहुत परेशान दीखता है। क्या कष्ट होगा इसे?"

मुनि बोले—

"अब तो इसके कष्टों के अन्त का समय आ गया। इसका स्पर्श करो। अभी सब बातें समझ में आ जायेंगी।"

आदेश का रहस्य न समझते हुए भी, मुनि का आदेश सिर माथे की भावना से कुमार ने तोते का स्पर्श किया तो वह देखते-देखते एक सुन्दर मानव बन गया। बड़ा आश्चर्य

हुआ गजसिंहकुमार को, उसके कुछ पूछने से पहले ही मुनि बोले—

"यह विद्याधर मकरध्वज है। एक अन्य दुष्ट विद्याधर ने इसे विद्याबल से शुक बना दिया था। तुम्हारे स्पर्श से इसे निज रूप पाना था, सो पा लिया।"

"वत्स! इस समय इतना ही जान लो। शेष बातें यह स्वयं ही तुम्हें बतायेगा। आज की रात तो मुझे इसके साथ इस वन में ही काटनी है। मैं भी एक उत्तरदायित्व से निवृत्त हुआ। अब तुम दोनों बातें करो मैं...।"

"ऐसे कैसे?" कुमार बीच में ही बोला—"कुछ देशना का अमृत तो पिलाते जाइए प्रभो! संसार का सार तो आपके वचनों में है।"

गजसिंहकुमार की प्रार्थना पर मुनि ने कुमार को धर्म-तत्त्व समझाया। उन्होंने कहा—

"वत्स! देखने में सभी मनुष्य एक-से लगते हैं। पर कोई किसी प्रबलतर को यों ही मार देता है। तुमने [illegible] को मारा था न? यह विद्याधर तुम्हारे हाथ के स्पर्श से ही [illegible] शुक काया से मुक्त हुआ? ऐसी बहुत-सी बातें हैं। इनका कारण है पुण्य-प्रभाव। मनुष्य चाहे तो पुण्य पूंजी को इतना बढ़ा सकता है कि सबको मुट्ठी में कर ले। लेकिन पुण्य भी एक कर्म ही है—अच्छा कर्म और कर्म एक बंधन है। पुण्य के संचय से लोग चक्रवर्ती आदि का अर्जन करते हैं और उसे भोगने के लिए उन्हें संसार में आना ही पड़ेगा। पाप कर्म और पु[illegible]

कर्म—दोनों के बंध रूप दुःख और सुखों को भोगने के लिए जन्म-मरण है, अर्थात् संसार का आवागमन। लेकिन पुण्य से आगे—सबसे आगे ढाई अक्षर का एक शब्द धर्म ही है। मनुष्य जन्म पुण्यार्जन के लिए नहीं, धर्माराधन करके मोक्ष पाने के लिए है। धर्म ही सार है। धर्म का सुख अखण्ड है और पुण्य के सभी सुख खण्डित। किन्तु पुण्य से धर्म निकट है।"

मुनिदेव ने बड़ी लम्बी देशना दी। गजसिंह पहले से ही अणुव्रतों का पालन करता था। अब उसकी धर्मरुचि और भी प्रखर हो गई। मुनि अन्यत्र ध्यान करने चले गए। अब गजसिंह कुमार और विद्याधर मकरध्वज में बातें होने लगीं। विद्याधर ने अपनी आपबीती कुमार को सुनाई। उसने कहा कि मैं वैताढ्य पर्वत पर स्थित रत्नपुर नगर में रहने वाला विद्याधर राजा मकरध्वज हूँ। मेरी रानी है रतिसुन्दरी। क्या कहूँ तुमसे, उसने रूप भी अपने नाम के अनुरूप पाया है।

विद्याधर ने आगे कहा कि कुमार यह सुन्दरता भी बड़ी बुरी चीज है। लोग चाहते हैं कि मेरी पत्नी सुन्दर हो—बहुत सुन्दर हो और सुन्दरतम भी हो। पर मित्र! ऐसी बहुत सुन्दर पत्नी भी किस काम की कि उसे देखते ही लोग मूर्च्छित होकर गिर पड़ें! आखिर इस सुन्दरता के भीतर भी तो बड़ी घिनौनी असुन्दरता छिपी है। रूपवती मानवी और कुरूपा स्त्री—दोनों के भीतर ही मल-मूत्र, मज्जा, रक्त-मांस, थूक और न जाने क्या-क्या भरा रहता है। फिर

१३४ / किस्मत का खिलाड़ी

में अँधेरा करने वाले घने बाल भी तो एक दिन घास की तरह जल जाते हैं। तब उनमें दुर्गन्ध भी कैसी बुरी लगती है।

कुमार ! अपनी आपबीती तो मैं सुनाऊँगा ही। पहले एक प्रसंग सुना दूं। बातों ही बातों में एक दृष्टान्त याद आ गया, सो सुन ही लो। एक राजा की राजकुमारी बड़ी सुन्दर थी। ऐसी ही सुन्दर कि देखने वाले पागल बनें। राजा के मन्त्री के पुत्र ने प्रतिज्ञा कर ली कि मैं या तो राजकुमारी से ब्याह करूंगा या फिर मर जाऊँगा। उस मनचले ने अपना सन्देश गुप्त रूप से राजकन्या के पास पहुँचा दिया। राज-कुमारी बड़ी चतुर थी। मेरे कारण एक युवक मारा जाए, यह तो अनर्थ होगा। यह युवक वासना का कीड़ा, मूर्ख और कामी है। मेरे तन पर मरता है। यदि मैं इससे ब्याह कर भी लूं तो यह किसी और पर भी ऐसे ही मरेगा। एक दिन मुझसे इसका मन भर जायगा और जब मुझसे सुन्दर किसी और को देखेगा तो ऐसी ही प्रतिज्ञा करेगा। अतः इसे सन्मार्ग पर लाना चाहिए। राजकन्या ने मंत्रिपुत्र को सत्पथ पर लाने की युक्ति सोचली। उसने मंत्रिपुत्र के पास सन्देश भिजवाया कि आठवें दिन तुम मेरे निजी भवन में आना। मैं तुमसे विवाह करूंगी। मेरी दासी तुम्हें लिवाने आयेगी।

इसके बाद राजकुमारी ने रेचक औषध खा ली। उसे दस्त होने लगे। मिट्टी के पात्र में वह मल त्याग करती और उसे सुन्दर रेशमी वस्त्रखण्ड से ढकवा देती। आठ दिन में

चीनियों पात्रों में उसने मल त्याग किया और वस्त्र से ढकवा दिया। आठ दिन में उसकी दशा बड़ी बुरी हो गई। सूखकर कांटा हो गई। आंखें गड्ढे में बैठ गईं और दांत बाहर निकल आये। अब वह कुरूप-सी हो गई। ऐसी कि कोई उसे पहचान न सके।

आठवें दिन राजकुमारी ने अपनी दासी को मंत्रिपुत्र के पास भेजा। मंत्रिपुत्र दासी के साथ आया। भवन में आकर पूछा—कहां है मेरे सपनों की रानी? दासी ने शय्या पर लेटी राजकुमारी की ओर इशारा कर दिया। मंत्रिपुत्र ने पास आकर राजकुमारी को देखा तो बोला—

"यह तो राजकुमारी नहीं है। मैंने क्या उन्हें देखा नहीं है? यह तो हड्डियों का ढांचा जाने कौन है?"

राजकन्या ने मुस्करा कर कहा—

"मैं ही राजकुमारी हूं। क्या मुझसे ब्याह नहीं करोगे?"

"तुम हो राजकुमारी?" मंत्रिपुत्र ने कुछ गौर से देख-कर कहा—"तो तुम ही हो। पहचान लिया मैंने। कपोल का कातिल तिल तो वैसा ही है, पर तुम्हारी सुन्दरता को क्या हुआ? तुम्हारा कंचन-सा सिन्दूरी रंग कहां उड़ गया? आंखें कैसे बैठ गई? गालों में गड्ढे और दांत भी बाहर निकल आये हैं।"

राजकुमारी ने एक ओर इशारा करके कहा—

"वह देखो। इन इन पात्रों में मेरी सुन्दरता भरी है।

मुझे चाहो तो मैं यहाँ हूँ ही और मेरी सुन्दरता चाहो तो मिट्टी के पात्रों में जाकर देख लो।

"दासी ! जा इन्हें मेरी सुन्दरता दिखा दे।"

दासी ने रेशम का कपड़ा उठाया तो दुर्गन्धपूर्ण म० को देखते ही भागा मंत्रिपुत्र। सब कुछ समझ में आ गया उसको। अब तो वह राजकुमारी के चरणों में गिर पड़ा। बस, इसी बात से उसे वैराग्य हो गया।

कुमार ! मेरी अपनी कहानी पीछे रह गई। अब मैं अपनी मूल बात पर आता हूँ। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मेरी रानी रतिसुन्दरी अपनी नाम के अनुरूप अनुपम सुन्दरी है। एक दिन मैं उसके साथ वन में भ्रमण को आया। हम दोनों एक द्रुमतल पर बैठे बातें कर रहे थे। मेरा सिर उसकी कदली स्तम्भ-सी चिकनी जंघा पर रखा था। किसी अन्य विद्याधर ने मेरी रानी के सौन्दर्य को देखा तो मर मिटा। नीति-मर्यादा भूलकर वह आकाश से नीचे उतर आया और मेरी अंकशायिनी का हाथ पकड़ लिया। बस, मैं प्राणों से .हर हो गया। मैं तो भिड़ गया उस दुष्ट विद्याधर से। उसके ऊपर चढ़ बैठा। ज्यों ही खड्ग से मारने को हुआ कि मेरी ही पत्नी ने मेरा हाथ पकड़ लिया और बोली—

"छोड़ दो इसे।"

मैंने कहा—

"तो तुम इसे छुड़वाती हो ?"

मेरी पत्नी ने मुझे समझाया—

"स्वामी ! यह मत भूलो कि दया धर्म का मूल है। अपने शत्रुओं पर भी दया करनी चाहिए। इसे मारकर स्वयं ही आप दुस्सह कर्म का बन्ध करेंगे। अपने किये का दण्ड इस कायर ने पा लिया। अब छोड़ भी दो इसे।"

पत्नी की बात मानकर मैंने इसे छोड़ दिया और पत्नी को लेकर अपने नगर खण्डपुर गया। कुछ दिन बीते कि एक दिन मैं अपनी पत्नी के साथ राजभवन की वाटिका में बैठा था। उस दुष्ट विद्याधर ने चुपके से मेरे ऊपर अभिमंत्रित जल छिड़क दिया और मैं तोता बन गया। बस, मैं उड़कर यहाँ आ गया। मुनि के आश्रय में मुझे संतोष हुआ। अन्तर्यामी मुनि मेरा रहस्य जान गए और मुझे सान्त्वना दी कि एक दिन कोई पुण्यात्मा जीव यहाँ आयेगा, तब तुम उसके स्पर्श से अपना रूप पाओगे।

कुमार ! यही है मेरी रामकहानी। अब जाने मेरी रानी कहाँ होगी ? बस रातभर की ही तो बात है। कल तो तुम्हें लेकर मैं अपने नगर में जाऊँगा ही और तभी जानूँगा कि मेरी प्राणप्रिया पर क्या-क्या बीती होगी।"

दूसरे दिन गजसिंहकुमार विद्याधर मकरध्वज के साथ उसके नगर खण्डपुर गया। पति-पत्नी बड़े प्रेम से मिले। राजभवन में बड़ी खुशियाँ मनाई गईं। सबने साथ बैठकर खाया। आज की रसोई विद्याधरी रति-सुन्दरी ने ही अपने ही हाथों से बनाई थी। मकरध्वज और गजसिंह ने साथ बैठकर

खाया और रतिसुन्दरी ने दोनों को परोसकर खिलाया।

× × ×

अब यह भी स्पष्ट कर दें कि क्या विद्याधरी रतिसुन्द
पर-पुरुषगामिनी थी ? अपने पति मकरध्वज के अतिरिक्त व
पहले से ही किसी अन्य विद्याधर पर अनुरक्त थी। अपने प्रे
द्वारा वह अपने पति को मरवाना चाहती थी। उसी के सं
पर उसका उपपति मकरध्वज विद्याधर को मारने आया था
लेकिन उपपति निर्बल निकला, सो मकरध्वज ने उसे नी
गिरा लिया। जब मकरध्वज उस दुष्ट विद्याधर को मार
लगा तो रतिसुन्दरी घबराई और उसने धर्म की दुहाई दे
अपने प्रेमी को छुड़वा दिया। उसने कहा था कि दया धर्म
मूल है। अपने शत्रुओं पर भी दया करनी चाहिए। इसे मा
कर आप व्यर्थ ही दुस्सह कर्म का बंध करेंगे। अपने किये
दण्ड तो इस कायर ने पा लिया। अब छोड़ ही दो इसे
रतिसुन्दरी ने कायर शब्द कहकर अपने उपपति को धिक्का
था कि तू इस मौके से लाभ न उठा सका। मकरध्वज बेचा
क्या जानता था कि धर्म की आड़ लेने वाली उसकी प
ऐसी है। यदि वह उस दिन उसकी बातों में न आता तो उ
कीरकाया में न आना पड़ता।

रतिसुन्दरी के पर-पुरुष भोग की कलई तो तब खु
जब उसने गजसिंह पर डोरे डाले। जिस समय वह अपने प
के साथ बैठे गजसिंहकुमार को भोजन परोस रही थी, त
वह उस पर अनुरक्त हो गई थी। जैसे-तैसे उसने दिन काट

दिखावे के लिए रात को वह पति के शयनकक्ष में सोई थी। पर जब उसका पति सो गया तो चुपके से उठी और गजसिंह के शयनकक्ष में पहुँच गई। पैर का अँगूठा पकड़कर जगाया उसे। हड़बड़ाकर उठा गजसिंह। सामने खड़ी रतिसुन्दरी को देखा तो आश्चर्य से बोला—

"आप ? आप यहाँ कैसे ?"

"आप-आप क्यों कहते हो प्यारे ?" रतिसुन्दरी ने काम-विह्वल होकर कहा—"आओ और मुझे भोग का अमृत दो।"

सब कुछ समझ गया कुमार। बोला—

"भोग तो विष है सुन्दरी !"

"तो तुम मेरी याचना को ठुकराओगे ?" बोली रति-सुन्दरी—"कैसे नर हो ? तुम्हें देखकर तो बूढ़ी भी जवान हो जाती है।"

गजसिंह ने स्पष्ट कहा—

"यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलेगी। मैं स्वदारा-संतोषी हूँ। जिस काम के लिए तुम मेरे पास आई हो, वह काम संसार में कुतिया किया करती हैं। नारीवेश में तुम कूकरी हो सकती हो, पर मैं नर ही हूँ। अपनी नारी के लिए नर और शेष सबके लिए भाई, पुत्र या पिता।"

रतिसुन्दरी को ऐसे अपमान की आशा नहीं थी। भीतर ही भीतर बहुत क्रुद्ध हुई। पर वह अवसर क्रोध को प्रकट करने का नहीं था। रतिसुन्दरी ने सोचा कि यदि इस समय मैं हल्ला करूँगी तो मेरी ही बेइज्जती होगी। क्योंकि

मैं ही इसके कक्ष में आई हूँ। मेरा पति पूछेगा कि यदि तू सती है तो तू इसके कक्ष में क्यों आई, तब मैं क्या कहूँगी ! अत: अपने मन का क्रोध—प्रतिशोधभाव छिपाकर रतिसुन्दरी वोली—

"युग-युग जीओ। मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रही थी। धन्य हो तुम।"

यह कह रतिसुन्दरी अपने पति के शयनकक्ष में गई और चुपचाप लेट गई। नींद नहीं आई उसे। उसने सोचा—'पति के रहते तो मैं उसकी आँखों में धूल झोंककर अपने प्रेमी के साथ रमण कर सकती हूँ, पर इसके रहते असम्भव ही है। मेरे प्रेमी ने मेरे पति को तोता वना दिया था। इसी ने उसे पुन: निजरूप दिया और यहाँ ले आया। अव पहले इसी को मिटाऊँगी और फिर वाद में अपने पति को भी। तभी मेरी चैन की छनेगी।'

ऐसा सोचते विचारते ही उसने रात काटी। कुछ दिन यों ही वीते। गजसिंह भी इस घटना को पी गया। रतिसुन्दरी ने अपने प्रेमी विद्याधर को सव वातें वता दीं। उसने आश्वासन दिया—

"चिन्ता मत करो। इसी गजसिंह के स्पर्श से मकरध्वज तोते से पुन: मनुष्य वन गया था तो मैं पहले उसे ही भस्म कर दूँगा। वाद में पुन: उसे तोता वना दूँगा। फिर कौन उसका स्पर्श करेगा ?"

अवसर देखकर एक दिन रतिसुन्दरी के प्रेमी विद्याधर

ने गजसिंह के कक्ष के चारों ओर आग लगा दी। बचाने वाले के हाथ हजार होते हैं और बहुत लम्बे होते हैं। गजसिंह की आंख ऐन वक्त पर खुल गई। वह वीर शय्या पर से उठकर भवन की छत पर चढ़ गया। छत से छतों पर होता हुआ आग के घेरे से बाहर हो गया। उपपति विद्याधर उसके पीछे-पीछे भागा। गजसिंह ने तक-तान कर बाण मारा और एक ही बाण में दुष्ट विद्याधर का प्राणान्त कर दिया।

फिर तो आग का हल्ला मच गया। विद्याधर मकरध्वज भी जाग गया था। नगरवासियों के प्रयास से आग पर काबू पा लिया गया। बहुत कुछ जल गया और बहुत कुछ बच गया। गजसिंहकुमार मकरध्वज का हाथ पकड़कर रतिसुन्दरी के उपपति विद्याधर के शव के पास ले गया और सब कुछ उसे बता-समझा दिया। मकरध्वज तो इतना क्रुद्ध हुआ हुआ कि तुरन्त ही अपनी पत्नी की नाक काटकर घर-नगर दोनों जगह से बाहर निकाल दिया। व्यभिचारिणियों के लिए यह दण्ड कुछ अधिक नहीं। यह तो लोक का दण्ड है। इसमें सन्देह न करें कि ऐसी स्त्रियों को पांचवां, छठा या कोई न कोई नरक निश्चय मिलता है। कौन-सा नरक मिलता है, इसमें दो मत हो सकते हैं, पर नरक मिलता है, इसमें दो मत नहीं, भले ही सूर्य पश्चिम में उदित हो जाए। लोक-परलोक दोनों को या किसी एक को बिगाड़ने वाले काम ही पाप हैं। लोक के कुछ पापों को अपराध कह दिया जाता है, पर परलोक के लिए उनका बंध भी होता ही है।

इस काण्ड के बाद गजसिंह विद्याधरों में पुजने लगा। खंडपुर के सभी लोग उसे चाहने लगे। अब कुछ दिन के लिए तो वह धारापुरी और फूलदे को भुला बैठा। उसने सोचा—पुरपइठान की राजदुलारी चम्पकमाला वन में तप कर रही है। फूलदे उससे तो बहुत अच्छी है। क्योंकि वह अपने पिता की देख-रेख में है। अतः मैं तो अब कुछ अन्य देश देखकर ही लौटूंगा। भाग्यपरीक्षा के लिए बारह वर्ष के लिए निकला था। तो क्या एक जगह रहकर भाग्यपरीक्षा होगी? पोतनपुर में भाग्यपरीक्षा हुई और फिर हुई धारापुरी में। यदि माण्डवगढ़ ही बैठा रहता तो फूलदे कैसे मिलती और यदि धारापुरी ही रहता तो मकरध्वज जैसे विद्याधर से मित्रता कैसे जुड़ती। ? सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि दुर्लभ सन्त के दर्शन हुए और उसकी देशना सुनने को मिली।

बहुत कुछ सोचने के बाद गजसिंह ने यही निश्चय किया कि अब जल्दी धारापुरी लौटकर नहीं जाऊँगा। कुछ दिन यहाँ खंडपुर में रहूँगा और यहाँ से आगे जाकर अन्य देश, नगर, वन-पर्वत देखूंगा।

गजसिंह के दिन खंडपुर में बड़े आनन्द से बीत रहे थे। क्योंकि विद्याधर राजा मकरध्वज उसका बहुत आभारी था। संसार में जिसके पुण्य प्रबल हों, उसके सभी अनुकूल रहते हैं और पद-पद पर उसके लिए सुख-ही-सुख हैं। फिर गजसिंह का तो स्वभाव भी ऐसा था कि नगरवासी उसके बिना मोल के दास थे।

10

विराट नगर वत्सदेश की राजधानी था। जैसा कि उसका नाम था, विराट नगर बहुत विशाल और विराट था। बड़े-बड़े धनकुबेर इस नगर में रहते थे। सभी के भवन भव्य और ऊंचे-ऊंचे थे, जिनके सुनहरी कंगूरे दूर से ही चमकते थे। इस नगर के आस-पास के गांव भी प्राकृतिक शोभा से सम्पन्न थे, जिनको नगर का भीड़भाड़ भरा कोलाहल पूर्ण जीवन पसन्द नहीं था, ऐसे बहुत-से श्रेष्ठी गांवों में हवेली बनाकर रहते थे। रत्नशाह नाम का एक धनी-मानी श्रेष्ठी विराटनगर के निकट गांव में रहता था। उसके कई भवन नगर में भी थे। लम्बा, चौड़ा व्यापार था उसका। गांव में उसके खेत भी थे। कृषि, पशुपालन, किराना, रत्नादि का विक्रय आदि कई चीजों का उसका व्यापार था। श्रेष्ठी रत्नशाह के एक विदुषी कन्या थी रत्नदे। एकमात्र वही उसके एक सन्तान थी। श्रेष्ठिपुत्री रत्नदे पाककला प्रवीण और संगीत-नृत्य, लेखन, चित्रकारी, द्यूतविद्या आदि अनेक कला-विद्याओं में निपुण थी। वह सुन्दर भी बहुत थी।

विराट नगर में चन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। रानी थी चन्द्रावती। इस राजदम्पती की पुत्री थी नृपदे। वह भी अनुपम सुन्दरी और विद्यापारंगता थी। राजा के मन्त्री

मतिसार की पुत्री देवलदे राजपुत्री सुघड़दे की बराबर की उम्र वाली और विद्याकलाओं में भी बराबर थी। दोनों सखियां थीं, संग-संग पढ़ी थीं और संग-साथ खेली भी थीं। अब जब दोनों विवाहयोग्य हो गईं तो भी साथ-साथ ही उठती-बैठती थीं। इन दोनों का बहनापा श्रेष्ठिकन्या रत्नदे से भी था। यों तो राजकन्या सुघड़दे मन्त्रिकन्या देवलदे और श्रेष्ठि-कन्या रत्नदे—तीनों ही सखियां थीं, पर रत्नदे अब इनके साथ प्रायः कम ही रह पाती थी, क्योंकि उसके पिता श्रेष्ठी रत्न-शाह अब प्रायः गाँव में रहते थे। फिर भी रत्नदे जब मन होता, रथ में बैठकर चाहे जब अपनी सखियों के पास चली जाती और फिर तीनों में जमकर गप-शप होती। विवाहयोग्य कुमारी कन्याओं में प्रायः व्याह की बातें ही होती हैं। कभी वे अपनी विवाहित सखियों की चर्चा करती हैं और कभी अपने कल्पित पति के बातों के चित्र बनाया करती हैं। यही बातें वे तीनों भी करती थीं।

एक दिन सवेरे-सवेरे ही रत्नदे राजभवन पहुँची। रानी मां चन्द्रावती से पूछा—

"रानी मां! सखी सुघड़दे कहां गई? मैं तो इसीलिए जल्दी आई थी कि भवन पर ही मिलेगी, पर सवेरे-सवेरे वह कहां?"

महारानी चन्द्रावती बोली—

"आठ-दस दिन से वह सवेरे ही कामदेव के मन्दिर चली जाती है। मन्त्रिकन्या देवलदे भी उसके साथ जाती है। वह

भर पीछे आ जायगी। तुम उसके कक्ष में बैठो। मैं दासी से कहे देती हूँ, वह गुपड़दे का कक्ष खोल देगी।"

रत्नदे बोली—

"मैं अकेली बैठकर क्या करूँगी? मैं भी उसे मन्दिर में ही जाकर मिल लूंगी। पर माँ, यह तो बताओ कि कामदेव पूजन की उसे क्या जरूरत पड़ गई? उसका ब्याह तो रत्नगढ़ के राजा रत्नचन्द्र से पक्का हो ही गया है। छह महीने पीछे तो बरात भी आयेगी।"

रानी चन्द्रावती बोली—

"तुम छोकरियों के मन की मैं क्या जानूं? तू उसी से पूछना। वैसे कामदेव तो कामनाओं को पूर्ण करने वाला देव है। पति के अलावा उसकी कोई और इच्छा होगी, जिसके लिए वह उसका नित्य पूजन करती है।"

रत्नदे बोली—

"रानी माँ! इतना तो सभी जानते हैं कि अभिन्नाभिन्न पति की कामना के लिए ही कामदेव का पूजन किया जाता है। खैर होगी कोई बात। मैं भी अब मन्दिर जाती हूँ।

रानी ने श्रेष्ठिकन्या रत्नदे को रोकते हुए कहा—

"रत्न! तू मन्दिर जायेगी और वह इधर आयेगी। व्यर्थ चक्कर पड़ेगा। क्या पता वह किस मार्ग से आवे। अगर जाना ही है तो तू मन्त्री मतिसार के भवन चली जा। संभव है राजकुमारी लौटकर कुछ देर मन्त्रिभवन पर देवलदे के साथ गपशप करे, वहाँ तुझे वह अवश्य मिल जायेगी।"

"अच्छा तो मैं चली।" कहकर उछलते-कूदते रत्नदे बाहर भाग गई। उसका रथ खड़ा ही था। उसमें बैठकर मंत्री मतिसार के भवन पहुँची तो राजकुमारी सुघड़दे और मन्त्रि-सुता देवलदे दोनों मिल गईं। दोनों को एक साथ देख रत्नदे ने उपालंभ-सा देते हुए कहा—

"तो आप दोनों यहाँ बैठी हैं और हम राजभवन पर प्रतीक्षा कर रहे थे।"

देवलदे बोली—

"आ सखी, तेरी ही कमी थी। तू तो गाँव में क्या रहने लगी, तेरे दर्शन तो दूज का चन्दा हो गए।"

"आकर क्या करूँ? तुम दोनों के मिलने का कोई ठिकाना हो, तब तो मैं रोज ही आऊँ।" आसन ग्रहण करते हुए रत्नदे ने कहा—"सखी सुघड़दे! कामदेव पूजन की यह नई बीमारी क्यों पाल ली?"

उत्तर दिया मन्त्रिकन्या देवलदे ने। वह बोली—

"सखी रत्नदे! मैं तुझे सब कुछ बताती हूँ। यह तो जानती ही है कि कामदेव की आराधना क्यों की जाती है? मनभाये पति की कामनापूर्ति के लिए ही कामदेव की पूजा होती है। हमारी सखी राजकुमारी सुघड़दे ने निश्चय किया कि वह दामवती के लाड़ले माण्डवगढ़ के राजकुमार ... के साथ ही ब्याह करेगी। छह महीने के पूजानुष्ठान में काम-देव अवश्य इच्छा पूरी करते हैं।"

रत्नदे बोली—"लेकिन यह तो बड़ी अजीब-सी इच्छा

राजकुमारी का व्याह रत्नगढ़ के राजा रत्नचन्द्र से पक्का हो चुका है। छह महीने पीछे ही राजगढ़ के राजा वरात लेकर आयेंगे। इधर गजसिंहकुमार का कोई ठिकाना नहीं कि वे कहाँ हैं। ऐसी दशा में बात कैसे बनेगी ?

"सखी देवलदे ! हम कन्याएँ तो विवश होती हैं। माँ-बाप जहाँ व्याह कर देते हैं वहीं जाना पड़ता है। मुझे तो एक लोकगीत की ये पंक्तियां याद आती हैं, जिसमें एक कन्या अपने पिता से कहती है—

"हम तो बाबुल तेरे खूँटे की गइया,
जहाँ बांधो बँधि जायें रे।
हम तो बाबुल तेरे अँगना की चिड़ियां,
जहाँ उड़ाओ उड़ि जायें रे।"

इस गीत में कन्या विवश है।

देवलदे बोली—

"सखी रत्नदे ! मैं तेरी बात काटती कब हूं ? लोक की प्रचलित परम्परा तो यही है। पर गांधर्व विवाह भी तो हम क्षत्रियों में होता ही है। कितनी ही कन्याओं ने अपने मनभावन के साथ अपनी इच्छा से विवाह किया है। तुम्हारी बात तो तब लागू होती है, जब कन्या की अपनी कोई इच्छा पहले से किसी वर के साथ न हो तब जिसके माता-पिता विवाह कर देते हैं, वही मनभावन, पतिपरमेश्वर और प्राणेश्वर हो जाता है। यहां पर तो बात ही दूसरी है।"

रत्नदे बोली—

"तुम्हारी बात भी मैं नहीं काटती। पर समस्या [illegible] यह है कि रत्नगढ़ का राजा अपनी वाग्दत्ता हमारी [illegible] सुघड़दे से ब्याह किये बिना मानेगा नहीं। इधर महाराज [illegible] अपनी वचन-रक्षा के कारण राजा रत्नचन्द्र का ही पक्ष [illegible] यह तो बड़ी कठिन समस्या आ पड़ी। यदि गजसिंह कु[illegible] का कहीं पता भी होता तो उन पर गुप्त सन्देश भी भिजवा[illegible] जाता।"

अब तक राजकुमारी सुघड़दे मौन बैठी थी। [illegible] विषय में हो रही देवलदे और रत्नदे की बातें ही सुन [illegible] थी। अब वह बोली। उसने रत्नदे से कहा—

"सखी रत्नदे! समस्या कठिन है, तभी तो दे[illegible] का सहारा मैंने लिया। या तो छह महीने में [illegible] इच्छा किसी-न-किसी अकल्पित ढंग से पूरी करेंगे या [illegible] अगले जन्म में अपने पति को पाऊँगी। कंठ में फन्दा [illegible] मरना तो मेरे हाथ की बात है।"

देवलदे ने प्रसंग बदला—

"छोड़ो अब ये बातें। आओ आज एक-एक बाज़ी [illegible] हो जाय। बहुत दिनों से हम चौपड़ नहीं खेलीं।"

"हमारा आपस में खेलना भी क्या खेलना है? [illegible] की हार-जीत समान ही है। मजा तो तब आये जब कोई [illegible] खिलाड़ी टकराये।"

देवलदे ने विनोद किया—

"तो तू किसी पुरुष के साथ खेलने की इच्छा है [illegible]

तिज्ञा कर ले कि जो तुझे चौपड़ खेलने में जीते वही तेरा
ति बने।"

"तू उल्टी बात कहती है सखी।" रत्नदे बोली—"मैं
ी बाजी हारने वाले के साथ भी ब्याह कर लूंगी। पर कोई
खिलाड़ी आये तो पहले। जो मेरा पति होगा, उसी से
लूंगी।"

देवलदे बोली—

"रत्नदे! तेरी बातें बड़ी अटपटी हैं। तेरे मन में अभी
ी कोई पुरुष है नहीं, और यह पहले मान रही है कि वह
खिलाड़ी ही होगा। क्या पता वह निरा बनिया ही हो।
णिक्‌पुत्री को वणिक्‌पुत्र ही तो मिलेगा।"

अब राजकुमारी ने भी इस विनोद में भाग लिया। वह
ोली—

"सखियो! तुम दोनों की बात पर मुझे एक चुटकला
ाद आ गया 'एक प्रौढ़ स्त्री एक दुकान पर छोटे शिशु के
पड़े लेने गई। दुकानदार उस स्त्री को जानता था। उसने
आश्चर्य से पूछा—अरे तुम शिशु के लिए कपड़े ले रही हो?
भी झेंपी नहीं। तपाक से जवाब दिया—तो क्या अब होंगे
ी नहीं?"

इस चुटकले पर देवलदे और रत्नदे दोनों हँसते-हँसते
ोट-पोट हो गईं। हँसते-हँसते मन्त्रिकन्या देवलदे बोली—

"यह स्त्री थी बड़ी चतुर और विचित्र भी थी। जब
ौढ़ा तक बाँझ रही तो भी उसे विश्वास था कि बच्चे नहीं

हुए तो क्या अब होंगे भी नहीं । तुम्हारा चुटकला भी सब जगह खूब जमा पर हमारी बातचीतों से इसकी संगत बिल्कुल नहीं बैठी ।"

"अब पूरा दिन संगत बैठाने में लगाओगी या कुछ खेलोगी भी । आज जमकर बाजी होगी । मैं रतन को इसके गाँव नहीं जाने दूंगी । कल यह भी मेरे साथ मन्दिर जायगी ।"

यों बातचीत का सिलसिला समाप्त हुआ । तीनों कर खेलने लगीं । जोड़ी पूरी करने के लिए मंत्रिकन्या ने एक अन्तरंग दासी को बैठा लिया । इन तीनों सखियों में भारी अभिन्नता थी । तीनों बड़े प्रेम से रहती थीं ।

× × ×

खंडपुर में गजसिंह को खूब मान-सम्मान मिला । धर राजा मकरध्वज तो उस पर बलिहार था । बलिहार न होता ? पुण्यों के धनी गजसिंह ने उसे अपने स्पर्श से काया से मुक्त करके पुनः विद्याधर रूप में परिणत किया उसके पत्नी-प्रतिद्वन्द्वी रतिसुन्दरी के उपपति को यम पहुँचाया था और दुराचारिणी नारी रतिसुन्दरी से भी कारा दिलाया था । अपने इन तीनों अद्भुत कार्यों से दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया था । ताड़नगिरी की श्रेणियों निवासी अन्य विद्याधर राजा भी उसे नमन करने लेकिन गजसिंह को यह प्रतिष्ठा और मान-सम्मान बाँधकर न रख सका । उसका पथ-सहचर

ही रहता था। सो नित्य भ्रमण के समय में वह एक दिन बहुत दूर जंगल में पहुँच गया। जब वन में ही सूर्यास्त हो गया तो गजसिंह ने सोचा—'अब पुनः लौटकर चंदपुर तो जा नहीं सकता। वैसे भी अब मैं किसी दूसरे नगर-देश जाऊँगा। अतः आज इसी वन में रात काटूं। सवेरे आगे कहीं जाऊँगा।'

यह सोच गजसिंह वन में ठहरने के लिए उपयुक्त स्थान देखने लगा। ऐसा स्थान जहाँ निकट ही जलाशय भी हो। इसी ढूंढ़-खोज में उसे एक रम्य आश्रम मिल गया। उस आश्रम में एक योगी अपने चारों ओर अग्नि जलाकर बीच में बैठा तप कर रहा था। गजसिंह ने दूर से योगी को देखा तो निश्चय किया—'इसी आश्रम में रात काटूंगा। योगी से सत्संग भी हो जाएगा। इस योगी का तप कितना कठिन है। तप तो सभी कठिन होते हैं। हर सम्प्रदाय में तप-साधना की अलग-अलग विधियाँ होती हैं, पर काया कष्ट तो सभी उठाते हैं। जैनश्रमण भी कितनी कठोर साधना करते हैं। सच ही तप में बड़ी शक्ति है।' यह सब सोचते हुए गजसिंह योगी के निकट पहुँचा और वन्दन किया तो अग्नि परिधि को पार कर योगी बाहर आया और गजसिंह से बोला—

"आओ गजसिंह ! तुम खूब आये। मैं जानता था कि तुम आओगे।"

योगी द्वारा अपना नाम लिए जाने से गजसिंह बड़ा चकित हुआ। कुशासन पर बैठते हुए उसने योगी से कहा—

"योगिराज ! आप मेरा नाम कैसे जान गए ? यह तो

वड़े आश्चर्य की वात है।"

योगी वोले—

"गजसिंह ! यों तो योगवल से सव कुछ जाना जा सकता है। पर मैं तो तुम्हें इसलिए जानता हूँ कि तुम मेरे दौहित्र हो। मैंने योगपथ ले लिया तो क्या मैं यह नहीं जानता कि गजसिंह नाम का मेरे कोई दौहित्र है। हाँ, पहचाना मैंने तुम्हें अपने योगवल से ही।"

फिर तो और भी वातें होती रहीं। गजसिंह ने आश्रम में ही रात विताई। फिर तो वह इक्कीस दिन तक योगी के पास ही रहा। वाइसवें दिन जव गजसिंह ने हो प्रस्थान की अनुमति माँगी तो योगी ने कहा—

"गजसिंह ! तुम अव वत्सदेश की राजधानी विराटनगर जाओ। वहाँ तुम्हें अन्यान्य सफलतायें मिलेंगी।

"वत्स ! मैं तुम्हें अक्षय तूणीर दे रहा हूँ। तुम अनगिनत वार शरसंधान करोगे तो भी इसके वाण कभी समाप्त नहीं होंगे। साथ ही मैं तुम्हें अजेय धनुष देता हूँ। इसकी टंकार से शत्रु वहरे हो जायेंगे और तुम अकेले ही शत्रु सेना का सफाया उसी तरह करदोगे जैसे गरुड़राज सर्प-समूह का करता है।"

इसके अतिरिक्त योगी ने गजसिंह को अभेद्य कवच भी दिया। इस कवच में यह गुण था कि शत्रु का कोई अस्त्र और कोई भी शस्त्र उस पर सफल नहीं हो सकता था। वाण, भाला तलवार सभी विफल होंगे, ऐसा गुण उस देवाधिष्ठित कवच

में था।

सब कुछ देने के बाद योगी ने पुनः कहा—

"वत्स ! मैं तुम्हें यह आशीष देता हूं कि अपने स्पर्श से अंधों को दृष्टि दोगे, कोढ़ी को निरोगी बनाओगे और सभी असाध्य रोगों को दूर कर दोगे। तुम्हारे कर-स्पर्श से बड़े-बड़े चमत्कारी परिवर्तन होंगे।"

इसके बाद गुरु का आशीष प्राप्त कर गजसिंह घोड़े पर बैठकर विराटनगर की ओर चल दिया। कुछ दिनों में वह विराटनगर के उसी गांव में पहुंचा, जहां श्रेष्ठी रत्नशाह रहता था। उसकी चतुर पुत्री रत्नदे भी अपने माता-पिता के साथ इसी गांव में रहती थी। घोड़ा दौड़ाता हुआ गजसिंह पन-घट पर पहुंचा। पनिहारिनें उसे प्यासी आंखों से देखने लगीं— 'कैसा रूप पाया है ! वह कामिनी कितनी भाग्यशाली होगी जिसका यह पति होगा।' सब उसे अपनी-अपनी ओर खींचने लगीं। गजसिंह ने एक से पानी मांगा तो सभी अपना-अपना कलश उठाकर पानी पिलाने को उद्यत हुईं। एक के कलश से उसने पानी पिया और उसके कलश पर हाथ फेरा तो वह मिट्टी का कलश सोने का हो गया।

सब-की-सब पनिहारिनें आंखें फाड़-फाड़कर सोने के अपने कलश को देखने लगीं। एक ने तो गजसिंह का हाथ ही पकड़ लिया और बोली—

"परदेशी मेरे घर चलो। अच्छा खाओ, पीओ और सुख से रात बिताओ।"

"मैं अकेला किस-किस के घर रहूँगा।" यह कह
सिंह ने अपना हाथ छुड़ाया और बोला—"मैं तो यहीं
किसी वृक्षमूल में रात काट लूँगा।"

बस अब वह पनघट से हटकर गांव के चौराहे
पहुँच गया। वहाँ उसने सुवर्ण खण्डों के ढेर लगा दिये।
भर में हल्ला मच गया कि हमारे गांव में कोई सिद्ध
आया है। उसके आस-पास बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी हो ग
सबने झोली भर-भरकर स्वर्णखण्ड ले लिये। इस भीड़
श्रेष्ठी रत्नशाह भी था। वह आग्रह करके गजसिंह को
घर ले गया। श्रेष्ठी ने मन-ही-मन सोचा कि यह
पुरुष तो मेरा जामाता बनने योग्य है। यही सोचकर
गजसिंह को अपने घर ले गया था। गजसिंह को अपने
में बैठाकर श्रेष्ठी ने अपनी पुत्री को बुलाकर कहा—

"रत्ना बेटी! देख ये कौन आये हैं! अरी इनकी
हमारे गांव में बड़ी चर्चा है। ये बड़े सिद्धपुरुष हैं। जब
चौराहे से घर आ रहा था तो इन्होंने एक अन्धे की आँखों
पर हाथ फेर दिया। ऐसा चमत्कार हुआ कि उसे सब कु
दीखने लगा।

"बेटी! अब यह हमारे मेहमान हैं इनके स्वागत
सत्कार की जिम्मेदारी मैं तुझे सौंपता हूँ। हम बड़े भाग्यशाली
हैं, जो इन्होंने हमारा आतिथ्य स्वीकार किया।"

बस फिर तो गजसिंह की बड़ी सेवा हुई। रा
रत्नदे उसके साथ चौपड़ खेलने बैठी। खेलने से पहले

पूछा—

"आप कैसे खिलाड़ी हैं। आप तो इस खेल में भी सिद्ध होंगे ?—"

गजसिंह बोला—

"राजपुत्रों को सभी विद्याएँ पढ़नी पड़ती हैं। राजा व्यापार नहीं करता, फिर भी वह वाणिज्य कला सीखता है, क्योंकि व्यापारियों से ही उसे कर मिलता है। यदि राजा वाणिज्य का क ख ग न जाने तो वणिक् उसे कर देने में चतुराई दिखायें।"

रत्नदे हँसकर बोली—

"मैं तो वणिक् कन्या हूँ, इसलिए मैं तो यह कहूँगी कि व्यापारी ही अपने कर से राजा का कोष भरते हैं।"

प्रसंग बदलते हुए गजसिंह ने कहा—

"मूल बात पर आओ। तुम चौपड़ खेलने की बात कह रही थीं। तो यदि मँजा हुआ खिलाड़ी मिले तो खेलने में मेरा भी मन लगता है।"

"तो फिर खेलकर देखें।" यह कहते हुए श्रेष्ठिकन्या रत्नदे ने चौपड़ बिछाया। खेल शुरू हो गया। गजसिंहकुमार बाजी पर बाजी हारता गया। बड़ा चकराया गजसिंह। बोला—

"तुम तो गजब की खिलाड़िन हो। कहाँ से सीखा तुमने ? मैं भी तुम्हारी-सी कुशलता अर्जित करना चाहता हूँ।"

रत्नदे बोली—

"यदि वचन दो तो बताऊँ ?"

"कैसा वचन ? गजसिंह बोला।"

रत्नदे बोली—

"यदि मेरे साथ ब्याह करो तो मैं अपनी सखी देवलदे के पास पहुँचा दूंगी। वह अद्वितीय खिलाड़िन है।"

"तुम बस उसका पता बता दो मैं स्वयं चला जाऊँगा।"

"बता दूंगी। पर ब्याह वाली बात पहले होगी ?"

गजसिंह ने झट रत्नदे का हाथ पकड़ लिया और बोला—

"तो बिना शर्त के नहीं बताओगी ?"

"ना !" रत्नदे ने मुस्करा कर कहा।

मुस्कराकर ही गजसिंह बोला—

"बड़ी नासमझ हो।"

"कैसे ?" रत्नदे ने पूछा।

गजसिंह बोला—

"पाणिग्रहण को ही तो विवाह कहते हैं। मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ लिया तो भी तुम नहीं समझीं कि मैंने तुम्हारी इच्छा स्वीकार करली। पुरुष जिसका हाथ पकड़ लेते हैं, उसे झूठ-मूठ ही नहीं पकड़ते।"

लजाकर रत्नदे गजसिंह के चरणों में झुक गई। उसकी चिबुक के नीचे हाथ लगाकर गजसिंह ने उसका मुँह ऊपर किया और बोला—

"अब तो पाणिग्रहण की धूम-धाम बाकी रह गई है।

अपने योगी गुरु की आज्ञा से मुझे विराटनगर जाना है। तुम अपनी सखी देवलदे का पता भी बता दो, उससे मैं चौपड़ विद्या की कला भी सीख लूंगा।"

रत्नदे ने पता बताते हुए कहा—

"विराटनगर के राजा चन्द्र की पुत्री राजकुमारी-सुपड़दे की सखी है, मन्त्रिकन्या देवलदे। दोनों मेरी भी सखियाँ हैं। आप जा तो रहे ही हैं दोनों आपको वहीं मिल जायेंगी। राजकुमारी भी आपको पाने के लिए कामदेव की पूजा करती है। देवलदे सहित हम तीनों एक जगह बंध जायेंगी, इससे अच्छा और क्या होगा?"

रात कटी। सवेरा हुआ। खा-पीकर गजसिंह विराट नगर के लिए रवाना हो गया।

× × ×

राजा चन्द्र की सुता सुपड़दे नगर के बाहर उद्यान में कामदेव का पूजन करने आई। साथ में जो सखियाँ थी, वे सब रथ के पास खड़ी रहीं। अकेली सुपड़दे ही पूजा का थाल लिये मन्दिर में प्रविष्ट हुई। धूप-दीप, नैवेद्य से उसने कामदेव की प्रतिमा का पूजन किया। फिर आँखें बन्द कर इस तरह आर्त स्वर में बोली—

"हे देव ! आज छह महीने पूरे हो गए। एक इरादा संकल्प लेकर मैंने आपकी आराधना शुरू की थी, पर आज तो मुझे निराशा दीख रही है। मेरा मनमीत तो अभी तक आया नहीं और रत्नगढ़ का राजा रत्नचन्द्र पचनों तक बरात लेकर

आ जायगा। उसके साथ मेरा बलात् विवाह होगा। आप बतायें कि मैं उससे विवाह करूँगी? कभी नहीं करूँगी। मैं अभी पाश बंधन से घुटकर मरती हूँ। पर इतना याद रखना कि अब कोई कन्या आपका पूजन नहीं करेगी। लोक यही कहेगा कि राजकन्या सुघड़दे ने छह महीने तक कामदेव के सामने नाक रगड़ी। कामदेव कुछ न कर पाया। वह फांसी लगाकर मर गई। मरना तो अब पड़ेगा ही।"

इतनी प्रार्थना करने के बाद सुघड़दे ने एक बार पुनः देवप्रतिमा के सामने सिर झुकाया और देवल (मन्दिर) से बाहर आकर एक पेड़ पर साड़ी का एक छोर बांधा। फिर उसे खींच कर देखा कि ठीक—मजबूत बंधा है या नहीं। इसके बाद दूसरे छोर का पाश (फन्दा) बनाकर गले में डाला। फिर जैसे ही कूदने को हुई कि फन्दा ऊपर से कट गया और सुघड़दे सूखे पत्तों के ढेर पर गिरकर मूर्च्छित हो गई।

गजसिंह भी उस समय उद्यान में था। वह पेड़ की ओट में से राजकुमारी की गतिविधि देख रहा था। उसी ने राजकुमारी को मरने से बचाया था। बड़े वेग से आकर उसने फन्दा काट दिया था। उसने मूर्च्छित सुघड़दे का शीतोपचार किया। जब राजकन्या को होश आया तो बोली—

"तो तुम्हीं ने बचाया है मुझे? क्यों बचाया? मरना तो मुझे है ही। ऐसे कब तक बचाओगे तुम? आखिर तुम कौन हो? क्यों आये हो यहां?"

राजकुमारी के सभी प्रश्नों का उत्तर देते हुए गजसिंह

। उसने कहा—

"मैं तो यह नहीं मानता कि मैंने तुम्हें बचाया है। सभी के पुण्य उन्हें बचाते हैं। पुण्यों के बल से बचाने के बहाने तो हजारों होते हैं। अब मेरा परिचय सुनो। मैं एक यात्री हूँ। पाण्डवगढ़ से यात्रा करने निकला हूँ। नाम गजसिंह है।"

"मेरे प्राणेश्वर!" बड़े हर्ष से राजकुमारी इतना ही कह पाई और हर्ष की अति से पुनः मूर्च्छित हो गई। जब पुनः होश आया तो अपलक नयनों से गजसिंह को देखने लगी। फिर बोली—

"विधाता के यहाँ देर है, अन्धेर नहीं। यह बात मेरी समझ में आज अच्छी तरह आ गई। मेरी काम-पूजा आज सफल हो गई। आपके साथ विवाह करने का मैंने अभिग्रह किया था। आप मेरे प्राणपति हैं। अब अपने इस रूप को सार्थक करो और मेरे साथ गांधर्व विवाह करके मुझे सनाथ करो।"

गजसिंह बोला—

"विवाह तो मैं अवश्य करूँगा। क्योंकि मेरे साथ विचार के अधीन रहना ही तुम्हारा जीवन है। पर गांधर्व विवाह नहीं करूँगा। तुम्हारे माता-पिता विधिवत कन्यादान दें, भाँवरें पड़ें; ऐसी धूमधाम से विवाह करूँगा।

सुपड़ने बोली—

"ऐसा नहीं हो सकता आर्यपुत्र! विराटनगर किसा सब रहा है कि बस कहूँ। परसों तक सवेरा है मैं बसाद का

जायेगी। अनेक राजा जुड़ेंगे। कुछ बरात में और कुछ मार्ग में, इन सबसे मोर्चा लेकर विवाह करना क्या संभव होगा? मेरी मानो तो गांधर्व विवाह करके मुझे अपने घोड़े पर बिठाकर कहीं भी ले जाओ।"

गजसिंह बोला—

"रत्नदे को भी ले जाना है। तुमसे विवाह भी करना है और देवलदे से चौपड़ बाजी की कला भी सीखनी है। तुम चिन्ता मत करो। सब ठीक हो जाएगा। तुम्हें वचन देता हूँ कि रत्नगढ़ के राजा रत्नचन्द्र को हराकर तुमसे विवाह करूँगा। यदि मुझे अपना पति मानती हो तो मेरी शक्ति पर भरोसा भी करो। अब तुम जाओ और देवलदे को यहीं भेज देना।"

सुघड़दे बोली—

"आर्यपुत्र! आप मेरे साथ चलें। मैं अपने भवन में छिपाकर रखूँगी। वहीं देवलदे को भी बुला दूँगी।

"छिपकर तो कुछ करना ही नहीं है।" गजसिंह ने कहा—"मैं या तो इसी उद्यान में रहूँगा या किसी पांथशाला में ठहरूँगा। अपने कार्य की योजना मैं स्वयं ही बनाऊँगा।

बस फिर गजसिंह की मूर्ति हृदय में बसाकर राजकुमारी सुघड़दे राजभवन चली गई। उसने मंत्रिकन्या देवलदे को बुलाकर सब बातें हँस-हँसकर बताईं। सब कुछ सुनने के बाद देवलदे ने सुघड़दे से कहा—

"सखी! दैव पर भरोसा रख। दैव बड़ा बलवान है

है। जब तेरी इतनी इच्छा पूरी हो गई तो इतनी भी होगी कि वे दामवती सुत रत्नगढ़ के राजा के भी मान मारेंगे। अब तो मैं भी यही चाहती हूँ कि तेरी सौत बन जाऊँ। मैं अपने पिता से कहूँगी कि वे तेरे पिता राजाचन्द्र को इसके लिए राजी करें कि वे तेरा विवाह राजा रत्नचन्द्र से न करके गज-सिंह से ही करें।

"असली बात तू छिपा रही है।" हँसकर गुघड़दे ने कहा—"तू अपने पिता से यही कहेगी कि मेरा ब्याह भी उनके साथ कर दो।"

देवलदे के चिकोटी काटते हुए राजकुमारी ने पुनः कहा—

"तो तू मेरी सौत बनेगी! अरी पगली सौत बनकर भी तू मेरी सखी ही रहेगी। रत्नदे तो तुमसे पहले ही मेरी सौत बन गई। उसी ने तो तेरा अता-पता दिया था। जा, जाकर उद्यान में उन्हें चौपड़ कला में प्रवीण बनाकर आ।"

इतने में रानी चन्द्रावती—गुघड़दे की माँ आ गई तो इन दोनों सखियों की चना-चना बन्द हो गई। इधर गजसिंह उद्यान में बैठा-बैठा सोच रहा था—यहाँ उद्यान में रहकर तो कुछ नहीं होगा। नगर में जाकर पहले कुछ चमत्कार नागरिकों को दिखाने चाहिए। फिर राजा की जिज्ञासा ज्यादा प्रगाढ़ रहेगी। यह सोच गजसिंह घोड़े पर चढ़ा और नगर के राजपथों तथा बाजारों में घूमने लगा।

घोड़ा दौड़ाते हुए उसने एक बड़ी दुकान पर एक करोड़

सेठ को बैठे देखा तो चुपचाप घोड़े से उतरा और उस आँखों पर हाथ फेर दिया। हाथ फेरते ही ऐसा चमत्कार हुआ कि वह अन्धा सेठ आश्चर्य से बोल उठा। पंखों की तरह उसने अपने दोनों हाथ फैला दिये और चिल्ला-चिल्ला कर बोला—

"देखो रे लोगों ! मुझे अब सब कुछ दीखता है। कौन है यह देवता, जिसने मुझे सुदृष्टि दी।"

यह कहते हुए दृष्टि प्राप्त सेठ ने गजसिंह को अपनी भुजाओं में भर लिया। फिर तो भीड़ इकट्ठी हो गई। सब के सब गजसिंह के रूप और उसके करतबों की सराहना करने लगे। फिर तो सुदृष्टि प्राप्त सेठ उसे अपनी हवेली पर ले गया। विराटनगर में यह बात फैल गई कि हमारे नगर में कोई सिद्धपुरुष आया है। सेठ के घर बहुत रोगी आये। गजसिंह ने सबको नीरोग कर दिया। कोढ़ियों पर उसने अंजलि में लेकर जल छिड़का तो उनका वर्षों का कोढ़ दूर हो गया। फिर तो राजकुमारी सुघड़दे और मंत्रिकन्या देवलदे भी गजसिंह से मिलने और बधाई देने आईं। सुघड़दे ने गजसिंह को देवलदे का परिचय दिया—

"यही है वह पण्डिता, जिसके सामने बड़े-बड़े खिलाड़ी नहीं ठहरते। रतनदे और मैंने इसीसे चौपड़ खेलना सीखा है।"

"अब तो मैं भी सीखूंगा।" कुमार ने मन की बात कही तो देवलदे बोली—

"पहले चौपड़ का युद्ध तो जीतें। विराटनगर [illegible]

तैयारियाँ तो देखो, रत्नगढ़ के राजा के स्वागत में क्या नहीं हो रहा है ? यदि उससे युद्ध नहीं जीता गया तो मेरी सखी नृपदे के प्राण नहीं बचेंगे ।"

कुमार कुछ नहीं बोला । क्योंकि दर्शकों और जोगियों की भीड़ एकदम बढ़ गई थी । फिर ये दोनों सखियाँ भी चली गईं ।

तीसरे दिन रत्नगढ़ का राजा रत्नचन्द्र बरात लेकर आ गया । उसकी बरात में कई देश के राजा भी थे । सबकी सम्मिलित सेना भी बहुत बड़ी थी । बरात उद्यान में ठहरी । नगर में भारी चहल-पहल थी । गली-गली में गंधद्रव्यों और अबीर-गुलाल की कीचड़ हो गई थी । द्वार-द्वार पर बन्दनवारें थीं । मोतियों की झालरों से नगर शोभित हो रहा था । द्वार पूजन की तैयारियाँ हो रही थीं । राजा चन्द्र तथा उनके सहयोगी बरात का स्वागत करने उद्यान जा चुके थे । विवाह मण्डप में बहुत-सी नारियाँ बैठी मंगल गीत गा रही थीं । नृपदे की सखियाँ-दासियाँ उसका शृंगार कर रही थीं और अज्ञात भय एवं आशंका से नृपदे बहुत घबरा रही थी । चन्दे उसे समझा रही थी कि सखी ! घबराने से कुछ नहीं होगा । होगा वही, जो होना है । इस पर नृपदे बोली—

"जब प्यासा मर ही जायगा, तब सरोवर सूखने से क्या लाभ ? अभी द्वार-पूजन होगा और फिर भाँवरें भी पड़ जायेंगी । वे जाने कहाँ सो रहे हैं ।"

"मैं जाती हूँ ।" देवन्दे बोली—"उन्हें उनके कर्तव्य

की याद दिलाकर आती हूँ।"

यह कह देवलदे उठी ही थी कि एक दासी ने हाँफते हुए समाचार दिया—

"बड़ा भयंकर युद्ध हो रहा है। एक ओर राजा रत्न-चन्द्र की सेना है और दूसरी ओर वही सिद्धपुरुष है, जिसने अन्धे सेठ को दृष्टि दी थी।"

सुघड़दे और देवलदे दोनों ही हर्षित हुईं और दासी से पूछा—

"तूने देखा ? आगे बता कैसे हुआ युद्ध।"

दासी बोली—

"बरात के लोग द्वार-पूजन को आ रहे थे। आगे हाथी पर वर राजा रत्नचन्द्र थे। उनके आगे-पीछे सशस्त्र सेना थी। इतने में ही उस सिद्धपुरुष ने एक टीले पर से बाण छोड़ना शुरू कर दिया। सेना में भगदड़ मच गई। सबसे पहले उन्होंने कई रथों की ध्वजाएँ काट दीं। उस वीर पुरुष ने घोषणा की कि आज मैं किसी का वध नहीं करूँगा क्योंकि विवाह जैसे शुभ काम में किसी का वध नहीं होना चाहिए। पर तुम्हें युद्ध करने योग्य नहीं छोड़ूँगा इतना कह उस वीर ने सैनिकों के हाथों, उँगलियों और पहुँचों को [illegible] करना शुरू कर दिया है। अब वे सैनिक अपने [illegible] न तो तलवार पकड़ सकते हैं और न बाण छोड़ सकते हैं।"

"अरी, चल हम ऊपर झरोखे से देखेंगी।" यह कहते हुए देवलदे ने सुघड़दे का हाथ पकड़ा और उसे ऊपर [illegible]

दोनों सखियाँ झरोखे से गजसिंह का युद्ध कौशल देख रही थीं।

राजा चन्द्र ने हुँकार के साथ पूछा—

"यदि तुम शुभ विवाह के कारण किसी का वध नहीं कर रहे तो फिर विवाह जैसे शुभ कार्य में बाधा क्यों डाल रहे हो ?"

गजसिंह ने भी हुंकार के साथ उत्तर दिया—

"इसलिए कि राजकन्या का विवाह मेरे साथ होगा। जिसे कन्या न चाहे, उस वर के साथ विवाह रोकना ही मेरी बाधा का उद्देश्य है।"

राजा बोले—

"तो तुम अपने किये का फल भोगोगे। मेरे सैनिक तुम्हें पकड़ने आ रहे हैं। प्राण प्यारे हैं तो समर्पण कर दो।"

कुमार ने कहा—

"अभी तो तेल देखो और तेल की धार देखो। गजसिंह को पकड़ने वाले ने अभी जन्म नहीं लिया है।"

"इतना अहंकार ?" राजा ने कहा।

"अहंकार नहीं।" गजसिंह ने कहा—"यह तो मेरा आत्मविश्वास बोल रहा है। अपनी माँ के दूध की लाज रखनी है।"

यह कहते हुए गजसिंह ने अपने धनुष की टंकार से शत्रुपक्ष के सैनिकों के कान बहरे कर दिये। अभेद्य कवच होने के कारण शत्रु के बाण टूट-टूट जाते थे। इधर कुमार के

अक्षय तूणीर के वाण समाप्त ही न होते थे। उसने इतनी बाण वर्षा की कि आकाश ढक गया। छत-छज्जों से नारियाँ युद्ध को देख रही थीं। अन्त यह हुआ कि रत्नचन्द्र के सैनिक भागने लगे। घोड़े उल्टे लौट पड़े। उसी के हाथी, उसी की सेना को रोंदने लगे। राजा रत्नचन्द्र ने लौटने में ही कुशल समझी।

इधर राजा चन्द्र ने मंत्री मतिसार से पूछा—

"मंत्रिवर ! अब क्या करना चाहिए? इस पर पाना तो असम्भव ही लगता है।"

मंत्री मतिसार ने कहा—

"राजन् ! मुझे देवलदे ने सब कुछ बता दिया। राजकन्या का अभिग्रह इसी के साथ विवाह करने, अन्यथा प्राणोत्सर्ग करने का है। दूसरे, यह सब विधि राजकुमारी के उपयुक्त है। इसका रूप और शौर्य तो आप देख ही रहे हैं।"

"तो तुम्हीं जाओ।" राजा बोला—"जामाता को स्वागतपूर्वक ले जाओ।"

मंत्री मतिसार ने कुमार की ओर रथ बढ़ाया। साथ श्वेत ध्वजा ले ली। श्वेत ध्वजा इसका संकेत थी कि युद्ध बन्द करो, हम समझौते के लिए आ रहे हैं। संकेत को देख कुमार ने युद्ध बन्द कर दिया। मंत्री रथ में बैठा गजसिंह कुमार को राजा चन्द्र के पास ले आया। रथ से उतरकर गजसिंह ने राजा से कहा—

"राजन् ! क्षमा करना। मैं गांधर्व-विवाह करके

चाहता था, इसीलिए मुझे यह सब बखेड़ा करना पड़ा।"

राजा बोले—

"यदि तुम यह सब न करते तो हम तुम्हारा परिचय भी कैसे पाते ? तुम्हें जामाता बनाकर मैं धन्य हो गया।"

राजा ने फिर मंत्री से कहा—

"मंत्रिवर ! सब कुछ तैयार है। इसी विवाह मण्डप में राजकुमारी का विवाह होगा। तुम वर को तैयार कराओ।"

मंत्री बोला—

"राजन् ! कुमार आपके ही जामाता नहीं है, मेरे और श्रेष्ठी रत्नशाह के भी है। राजकुमारी रूपकदे के साथ मेरी पुत्री देवलदे और श्रेष्ठिकन्या रत्नदे ने भी इस नाटक में मुख्य भाग लिया है।"

हँसने लगे राजा चन्द्र। बोले—

"अरे ये छोकरियाँ तो हम बुजुर्गों से भी आगे निकल गई। भला हम तीनों पिता ऐसा जामाता कैसे ढूंढ़ पाते ? जल्दी करो। तीनों नगरियों को वधू वेश में तैयार कराओ सब।"

फिर तो तीनों का विवाह एक साथ हुआ। त्रिवेणी तुल्य तीन पत्नियाँ थीं गजसिंहकुमार के। बड़े आनन्द से रहने लगा गजसिंह। कुछ ही दिन बाद विराटनगर में एक जैनाचार्य आये तो राजा चन्द्र अणगार बन गया और गजसिंह बना राजा। अब गजसिंह वत्सदेश का राजा था। रूपकदे, देवलदे और रत्नदे उसकी रानियाँ थीं। राजा गजसिंह इनकी

प्रजा का पालन न्यायनीति से करने लगा।

बारह वर्ष पूर्णता की ओर बढ़ रहे थे। कुमार अब फूलदे और चम्पकमाला को लेकर माण्डवगढ़ लौटना चाहता था। उसे अब अपनी माता दामवती की याद भी आती थी। सो एक दिन गजसिंह ने राज-काज विलक्षण मंत्री मतिसार को सौंपा और अपनी तीनों पत्नियों सहित पोतनपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। साथ में अपार चतुरंगिणीसेना भी थी।

11

गजसिंह की अपार सेना देखते ही पोतनपुर के राजा रूपसेन के छक्के छूट गए। वह तो उस अकेले के शौर्य से ही मात खा चुका था। अब भला उसका सामना कैसे करता? अतः मंत्रियों सहित रूपसेन ने गजसिंह का स्वागत किया और बोला—

"मैं तो तुमसे वैसे ही हारा हूँ। अब तो तुम वत्सदेश के राजा भी हो। लेकिन अब तुम पोतनपुर के भी राजा बनोगे। मेरे कोई पुत्र नहीं है तो तुमसे अच्छा उत्तराधिकारी कौन मिलेगा? मैं अब धर्म की शरण में जाकर आत्मोद्धार करूँगा।"

पोतनपुर नरेश रूपसेन ने संयम ले लिया और गजसिंह अब पोतनपुर के राज-सिंहासन पर बैठा। वहाँ की प्रजा तो पहले ही गजसिंह को चाहती थी। उस नरपुंगव ने एक नर-भक्षी असुर से पोतनपुर की प्रजा की प्राणरक्षा की थी। ऐसे शक्तिशाली प्रजारक्षक राजा को पाकर किस देश की प्रजा धन्य नहीं होगी?

कुछ दिन में पोतनपुर की राजव्यवस्था ठीक करके गजसिंह राजा मालव की राजनगरी धारापुरी पहुँचा। फूलदे अपनी तीनों सौतों से सगी-सहोदरा बहनों की तरह मिली।

फूलदे, सुघड़दे, देवलदे और रत्नदे ये चार पत्नियां [illegible]
सिंह के। चारों चार दिशाओं की तरह गजसिंह को घेरे [illegible]
थीं। चारों अपने बीते प्रसंगों की कहानी आपस में क[illegible]
पोतनपुर में मालिन के घर से सुरंगद्वार से गजसिंह [illegible]
छिपकर मिला करता था, यह प्रसंग फूलदे हँस-हँसकर [illegible]
थी। ये सब बातें गजसिंह के सामने ही होती थीं। इ[illegible]
में एक दिन सुघड़दे ने गजसिंह को उपालम्भ दिया—

"मुझसे चोरी-चोरी गांधर्व-विवाह करने में [illegible]
और मेरी बड़ी बहन से चोरों की तरह मिलते थे।"

गजसिंह ने भी तपाक से जवाब दिया—

"ये तो सबकी जानकारी में राजा हरिसेन [illegible]
थीं। इसलिए यह नाटक करना पड़ा। यदि तुम भी [illegible]
के राजा की पत्नी बन जातीं तो तुम से भी मि[illegible]
मिलता।"

ऐसे ही रसचर्चा में दिन बीतते थे कि [illegible]
धारापुरी के राजा सुरेन्द्र के मन में वैराग्य भाव जगा। [illegible]
भी गजसिंह को राजपाट सौंप कर वन का मार्ग [illegible]
पहले उसे राजा सुरेन्द्र ने पन्द्रह गाँव तो दिये थे, [illegible]
राज्य ही दे दिया। गजसिंह अब तीन राज्यों का रा[illegible]
गया। यहां का भार भी उसने मंत्रियों को सौंप दो[illegible]
पत्नियां तथा अपार सेना के साथ [illegible] की ओ[illegible]
कर दिया। मार्ग में चम्पकमाला उसे मिली। इस [illegible]
के बीच इस बार चम्पकमाला उसे नहीं पहचान पाई। [illegible]

गजसिंह ने उस तपस्विनी को पहचान लिया। पास आकर उसने कहा—

"प्रिये ! तुम कंचन से कुन्दन बन गईं। तुम्हारे हठ के कारण मैं तुम्हें तुम्हारे पीहर नहीं लौटा सका। यह देखो, तुम्हारे तप के कारण ही मुझे इतनी भारी सफलता मिली है।"

पहले तो चम्पकमाला चकराई। फिर एक दम पति को पहचान कर उसके चरणों में गिर पड़ी। आँखों में खुशी के आँसू थे और ओठों पर हँसी भी थी। बोली—

"स्वामी ! इस बार मैं मात खा गई। पहले जब मेरी मंजरी गयी। आपको उद्यान से रंगभवन में लाई थी, तब आप मुझे नहीं पहचान पाये थे। इस बार मैं नहीं पहचान पाई। लेकिन क्या मेरी तपस्या का यही फल मिला कि मेरे लिए चार सौतें ले आये ?"

गजसिंह ने असमंजस में पड़ी फूलदे, सुघड़दे आदि चारों की ओर देखते हुए कहा—

"प्रिये ! ये चारों तुम्हारी प्रीति का विस्तार ही हैं। इन्हें अभिन्न समझो। पटरानी तो तुम्हीं रहोगी। आओ, मैं इनसे तुम्हारा परिचय तो दूं। ये चारों सोच रही होंगी कि हमारा पति एक तपस्विनी से क्यों कर प्रेमालाप कर रहा है।"

फिर गजसिंह ने चारों का परिचय चम्पकमाला को दिया और चम्पकमाला का परिचय चारों को दिया। चम्पकमाला की पतिभक्ति से चारों ही प्रभावित हुईं। सुघड़दे बोली—

"बहन, तुम वैसे भी तो हम चारों से बड़ी हो। [illegible] हो तुम तो। फिर तुम्हारी पतिभक्ति तो ऐसी है कि [illegible] उसकी छाया भी नहीं। अतः हम चारों तुम्हारे [illegible] बनकर ही रहेंगी।"

फिर देवलदे ने कहा—

"राजा तो अनेक करते हैं। वे अनेक भी [illegible] रहती हैं। पुरुष बड़ा अहंकारी होता है न, इसलिए [illegible] रूप में वह अपने पुरुषत्व का गौरव दिखाने के लिए [illegible] विवाह करता है।"

रत्नदे ने भी अपनी कही। वह बोली—

"अब इन पर रोक लगेगी। छठी अब हम नहीं [illegible] देंगी। जैसे पुरुष के पाँच इन्द्रियाँ होती हैं, ऐसे ही हम [illegible] ही रहेंगी।"

गजसिंह ने पाँचों से कहा—

"तुम पाँचों यह भी तो सोचो कि मुझे पाने के [illegible] तुमने हाथ पैर कितने पटके थे। कोई बाती [illegible] तुड़वाती थी। कोई कामदेव की पूजा करती थी और चौपड़ खेलने में सिद्ध बनती थी।"

सब हँसने लगीं। इस तरह कई दिन [illegible] मंगल रहा। फिर गजसिंह पुरपट्टन पहुँचा। [illegible] सिंह पहले तो चकराया कि यह कौन राजा [illegible] आ गया। फिर तो सब मालूम हो ही गया। [illegible] गजसिंह का नगर प्रवेश ऐसी धूमधाम से करवाया, [illegible]

कुमारी चम्पकमाला का ब्याह ही हो रहा हो। उसने जामाता से कहा भी—

"जामाता! परिस्थिति ऐसी बनी कि अचानक ही तुम अपने मामा शूलपाणि के साथ रात में आ गए। तब विवश होकर मुझे अपनी बेटी का विवाह ऐसी स्थिति में करना पड़ा कि किसी ने जाना भी नहीं। फिर तुम जाने कब आये और बेटी को लेकर चले गये। मैंने तो इसकी बहुत ढूंढ़-खोज कराई थी। बाद में इसकी सखी मंजरी ने ही सब रहस्य बताया था। तभी से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। अब मैं अपनी इच्छा से खूब उत्सव मनाऊंगा, ताकि सभी जानें कि मेरा जामाता कैसा है। फिर तो तुम्हें मेरा दीक्षा-महोत्सव मनाना है।"

"तो आप भी मुझे छोड़कर जायेंगे? विराट नगर के राजा चन्द्र गए। पोतनपुर के रूपसेन और धारापुरी के राजा सुरेन्द्र भी अणगार बने। आप भी मुझे छोड़ जायेंगे?"

राजा गुलाबसिंह बोला—

"वत्स! यह तो हमारे आर्यवंश की अमिट परम्परा है। राज्य तो किसी राजा के साथ जाता नहीं। उसका धर्म ही साथ जाता है।"

यही हुआ। कुछ दिन बाद राजा गुलाबसिंह ने भी भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली। अब गजसिंह चार राज्यों का राजा था—विराट नगर, पोतनपुर, धारापुरी और पुर-पट्टण। अपनी पांचों पत्नियों के साथ गजसिंह कुछ दिन

पुरपइठान में रहा । अब उसे माण्डवगढ़ आना था । [illegible]
उसकी माता दामवती ने वचन ले लिया था कि [illegible]
पूरे होते ही लौट आना, नहीं तो मैं प्राण त्याग दूँगी । [illegible]
गजसिंह ने अपने सुयोग्य मंत्रियों को शासन भार सौं[illegible]
पाँचों पत्नियों और अपार सेना के साथ उसने माण्डवग[illegible]
ओर प्रस्थान कर दिया । मार्ग में जो राजा मिलते थे, वे [illegible]
सिंह को नमन करते थे । भेंटादि देकर सभी राजा उ[illegible]
स्वागत करते थे ।

बड़ी-बड़ी मधुर-मनोहर कल्पना करते हुए [illegible]
माण्डवगढ़ की ओर बढ़ रहा था ।

× × ×

इधर माण्डवगढ़ के राजा जामजशा के [illegible] पुत्र [illegible]
अंधे, लूले-लँगड़े, कुरूप और अयोग्य थे । बड़े होकर वे [illegible]
निकम्मे ही रहे । उनके करतबों को देख-देख कर राजा जा[illegible]
जशा बड़ा खीझता था । अब वह गजसिंह के साथ [illegible]
अपने बुरे व्यवहार पर बहुत पछताता था । पर प[illegible]
अब क्या होता ? एक दिन उसने अपने मन की पीड़ा मु[illegible]
मंत्री फूलसिंह के सामने रखते हुए कहा—

"मंत्रिवर ! तुम्हें तो याद है कि एक दिन [illegible]
चाण्डालिनी ने सवेरे-सवेरे मेरा मुखदर्शन अशुभ [illegible]
अपुत्री राजा का प्रभात मुखदर्शन अशुभ होता है, [illegible]
विश्वास से पीड़ित मैं नगर-देश छोड़ कर भाग [illegible]
देवी-इन्द्राणी ने सात फल दिए कि सात पुत्र होंगे । [illegible]

कहिये, गजसिंह तो यहाँ है नहीं और इन छहों में एक भी राजा बनने के योग्य नहीं है। तब क्या मैं उत्तराधिकारी के अभाव में दीक्षा नहीं ले पाऊँगा ?"

राजा की पीड़ा पर मरहम-सा लगाते हुए मंत्री फूलसिंह ने कहा—

"राजन् ! जैसा कर्म नचाते हैं, वैसा ही नाचना पड़ता है। आपकी धार्मिकता में यद्यपि कोई कमी नहीं है। फिर भी अपने मन में अपने ही पुत्र गजसिंह के प्रति शत्रुभाव रहा। संभव है आपके इस दुर्व्यवहार के पीछे भी गजसिंह की कुछ भलाई छिपी हो। अब पछताने से क्या होगा ? आगे की सोचो।"

ऐसे ही दिन बीत रहे थे कि एक दिन सूचकों ने राजा जामजशा को सूचना दी कि किसी बड़े राजा ने आक्रमण की इच्छा से हमारे नगर के समीप विशाल सेना के साथ पड़ाव डाला है। सुनते ही मूच्छित हो गया राजा जामजशा। मंत्रियों ने उसे होश में किया तो वह कातर स्वर में बोला—

"मंत्रियों ! अब तुम्हीं बताओ, क्या करूँ मैं ? हमारे पास पर्याप्त सेना भी नहीं है। अब मेरा पौरुष भी थक गया है। यह सब समय की बात है कि एक समय वह भी था, जब वन में मैंने एक असुर को अपने वश में किया था। लेकिन आज एक राजा का सामना करने की शक्ति मुझमें नहीं है।"

एक मंत्री ने समर्थन के स्वर में कहा—

"सो तो है ही। महाभारत जैसे युद्ध को जीतने वाले

अर्जुन वन मार्ग में गोपियों की रक्षा नहीं कर सके थे और उनके रहते भीलों ने गोपियाँ लूट ली थीं। तभी से यह कहावत चली आती है—

समय-समय का फेर है, समय बड़ा बलवान।
भीलन लूटीं गोपिका, वहि अर्जुन वहि बान॥

राजा ने पुनः कहा—

"तुमने भी मेरी बात का समर्थन भर किया है। [illegible] क्या होगा ? कुछ ऐसा उपाय बताओ कि इस [illegible] को टाला जा सके।"

एक अन्य सचिव ने व्यंग्य में कहा—

"राजन् ! क्षमा करें। महारानी [illegible] आदि अपनी छहों रानियों से कहें कि अपने [illegible] को युद्ध में भेजें। इन छहों राजपुत्रों में जो युद्ध [illegible] करके विजयी होगा, उसे ही आप माण्डवगढ़ का राज [illegible] येंगे, ऐसी घोषणा भी आप कर दीजिये।"

सच्ची बात बड़ी कड़वी होती है। राजा [illegible] यह व्यंग्य बुरा लगा। मन-ही-मन कुढ़ गया राजा। [illegible] क्या ? कुछों ने गजसिंह की प्रशंसा कर डाली, [illegible] को बहुत बुरा लगा। इतने पर भी गजसिंह [illegible] वर अब भी उभर आता था। क्रोध को [illegible] राजा ने मंत्री फूलसिंह से कहा—

"मंत्रिवर ! पहले तुम्हारी बात नहीं मानी [illegible] ताया। अब पुनः पछताना नहीं चाहता। [illegible]

कहोगे, मैं करूंगा । तुम्हीं कोई उपाय बताओ ।"

महामात्य मंत्री फूलसिंह ने कहा—

"राजन् ! आप किंचित् भी न घबरायें । मैं अभी जाकर सब बातों का पता लगाता हूँ । आखिर यह भी तो जानें कि यह आक्रामक राजा चाहता क्या है ?"

यों राजा को आश्वासन देकर मंत्री फूलसिंह आक्रामक राजा के पास गया । वह राजा और कोई नहीं, गजसिंह ही था । मंत्री गजसिंह से मिला । गजसिंह ने सम्मान के साथ मंत्री को वंदन किया और बोला—

"तात ! आप तो मेरे पितृव्य के समान हैं । आपने ही मेरी रक्षा की थी । वरना, मेरा पिता तो मुझे मारना ही चाहता था । अब सबसे पहले मुझे यह बताओ कि मेरी माता कैसी है ।"

मंत्री बोला—

"गजसिंह कुमार ! तुम्हारी माता कुशल से है । पुत्र-वियोग का दुःख तो तुम अब उनसे मिलकर ही दूर करोगे ।"

"कुमार ! यदि मुझे पितृव्य के तुल्य मानते हो तो मेरी बातें भी मानो । अपने पिता के बुरे व्यवहार की सभी बातें बुरे स्वप्न की तरह भूल जाओ । यह भी तो सोचो कि उनके द्वारा तुम्हारा देश-निष्कासन तुम्हारे हित में ही रहा । यदि ऐसा न होता तो तुम चार राज्यों के स्वामी और पाँच पत्नियों के पति कैसे बनते ? अब अपने पिता का पूरा सम्मान दो । पुरानी बातों की चर्चा भी मत करना ।"

गजसिंह ने आश्वासन दिया—

"जैसा आप कहेंगे, वैसा ही करूँगा। आखिर आप मेरे पिता ही हैं।"

फिर मंत्री राजा जामजशा के पास लौटकर [illegible] हर्ष संवाद सुनाया—

"राजन् ! सब चिन्ता त्यागो। यह तो [illegible] गजसिंह ही आया है। उसके प्रताप का वर्णन मैं [illegible] कर सकता हूँ ? उसके स्वागत की तैयारियाँ [illegible]।"

राजा जामजशा की आँखों में हर्षाश्रु [illegible] फिर तो बड़ी धूम-धाम से गजसिंह का नगर प्रवेश हुआ। गजसिंह ने मात-विमाता सभी के चरण छुए। [illegible] छुए। उस दिन पुण्यात्मा गजसिंह ने [illegible] स्पर्श किया तो वे सब दृष्टिवान, सुन्दर और [illegible] गए। अब इस राजपरिवार में वैर ईर्ष्या समाप्त हो [illegible] सातों भाई एक हो गए। छहों रानियों ने पटरानी [illegible] क्षमा माँगी। अब वह राजभवन के अन्तःपुर की [illegible] गजसिंह के सिर पर हाथ फेरते हुए पटरानी [illegible] के आँसू बहाये। पाँचों पुत्र व वधुओं की [illegible] पुर गूंजने लगा।

माण्डवगढ़ में ऐसा हर्षसागर उमड़ा कि [illegible] शब्दों में करना कठिन होगा। कुछ दिन [illegible] माण्डवगढ़ में एक ज्ञानी आचार्य आये। राज-प्रजा [illegible] देशना सुनने गए। राजा जामजशा ने [illegible]

सहित दीक्षा अंगीकार करली। माण्डवगढ़ का राजा बना गजसिंह। अपने छहों भाइयों को पुत्र-सम्मान और प्यार देते हुए गजसिंह पांचों राज्यों का प्रबन्ध करने लगा। इस बड़ी राजव्यवस्था में वह अपने भाइयों का सहयोग भी लेता था।

कालान्तर में गजसिंह महाराज की पांचों रानियों ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। समय पाकर पांचों राजकुमार युवा हुए। विद्या पारंगत भी बने पांचों। पांचों का विवाह भी हो गया। समय सर सर सर बीतता जाता था। गजसिंह बड़ी योग्यता से प्रजापालन कर रहा था।

इसी बीच माण्डवगढ़ में आचार्य धर्मघोष पधारे। उनके साथ सैकड़ों श्रमण थे। राजा गजसिंह मुनि की देशना सुनने गया। मुनियों ने कर्मों की अटलता पर अनूठी भरी देशना दी। गजसिंह के तो कान खुल गए। उसने सोचा, पूर्व शुभ कर्मों के कारण मैंने यह ऐश्वर्य पाया और अशुभ कर्मों के कारण बारह वर्ष का निर्वासन भी मिला। तो अब भी मैं राज्य से चिपका रहूँ? अब तो वही सब कार्य मुझे भी करना चाहिए जो मेरे पूर्वजों ने किया और पिता ने भी किया। अब तो मैं संयम लूंगा। जब गजसिंह ने अपना निश्चय अपनी रानियों को सुनाया तो सबकी सब एक स्वर में बोलीं—

"तो आपके ही कर्म हैं? हमारे कर्म नहीं हैं क्या? हम भी अपने कर्मों का क्षय करेंगी। जीवनभर साथ रहीं तो संयम में भी आपसे पीछे नहीं।"

"यह तो और भी अच्छी बात है।" गजसिंह ने
सहमति दी। फिर उसने पाँचों पुत्रों को राज्यभार
विराट नगर का राज्य सुघड़दे के पुत्र को दिया।
पुरपइठान का चम्पकमाला के पुत्र को, पोतनपुर का
के पुत्र को, धारापुरी का फूलदे के पुत्र को और
का राज्य रत्नदे के पुत्र को दिया। उसके
माता-पिता का दीक्षा महोत्सव कराया। छहों
संयम पथ का सहारा लिया।

पाँचों राजपुत्र अपनी-अपनी प्रजा का पालन
से करने लगे। इधर समय पाकर राजर्षि गजसिंह और
साध्वियों—चम्पकमाला, फूलदे, सुघड़दे, रत्नदे और
ने शरीर त्याग कर परमपद प्राप्त किया।